निर्झर

संग्रहकर्त्ता

महाराजनारायण एम० ए०

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्झर

संग्रहकर्त्ता

महाराज नारायण एम० ए०

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

सावित्री कॉलेज, अजमेर

भूतपूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग
मेयो कॉलेज, अजमेर

प्रकाशक

अजमेर पब्लिशिंग हाउस
अजमेर.

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक—
शिवनारायण
प्रोपराइटर
अजमेर पब्लिशिंग हाउस
अजमेर.

मूल्य १।)

मुद्रक—
जे० एन० भिडे,
राजस्थान टाइम्स् लि०,
अजमेर.
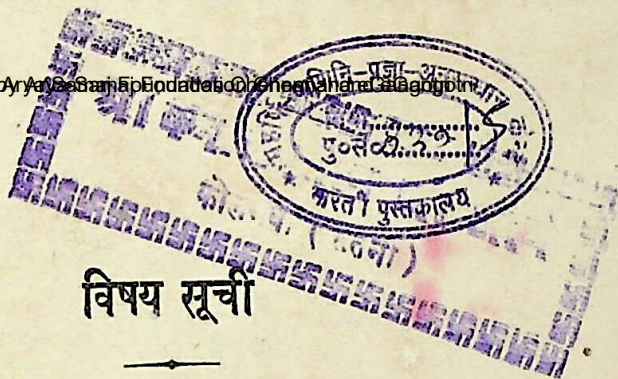
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

प्रस्तावना

काव्य-स्वरूप

ज्ञान के संचित कोष की संज्ञा साहित्य है। सहित या सम-न्वय का भाव ग्रहण करने से उसे साहित्य कहा जाता है। विश्व में ज्ञान का सम्बंध मानव ही से है इस हेतु साहित्य मानव ज्ञान ही का प्रतिविम्ब है। साहित्य का केन्द्र मानव है। मानव कल्याण हेतु साहित्य की सृष्टि होती है। मानव ज्ञान लोक सीमा और लोक सीमा से परे का होता है। इस हेतु साहित्य भी दो प्रकार का होता है, लौकिक और अलौकिक। अलौकिक ज्ञान के नाते साहित्य भी अलौकिक हो ऐसा नहीं है। यह ज्ञान लौकिक शब्दों में प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया जाता है और इन प्रतीकों द्वारा ही लौकिक और अलौकिक ज्ञान का सम्मिश्रण हो जाता है। यह समन्वय वैदिक काल से चला आता है।

साहित्य में असीम शक्ति है। संसार का इतिहास इसका प्रमाण है परन्तु उसके निर्माण में अलौकिक अवयव नहीं होते। मानव प्रौढ़ साहित्य की सर्जना करता है जिसमें राष्ट्रों में उथल पुथल कर देने और मानव को देवता बना देने की शक्ति निहित रहती है। आरम्भिक अवस्था में साहित्य में उपयोगिता और सुन्दरता दोनों कर्तव्य बने रहते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारणतः साहित्य दो रूपों में विचरण करता है कभी वह अन्तःकरण में लीन होता और कभी वाह्य में। और कभी अन्तः और वाह्य दोनों कक्षों में दृष्टि गोचर होता है। जब रचयिता अंतरदृष्टि को प्रधानता देता है तो साहित्य कल्पना प्रधान होता है और वहि दृष्टि की प्रधानता के कारण साहित्य यथार्थवादी होजाता है।

कल्पना प्रधान साहित्य में सौन्दर्य अथवा आदर्श के लिये और यथार्थ वादी साहित्य में उपयोगिता के लिये अधिक स्थान होता है। साहित्य के दोनों अंग गद्य और पद्य यथार्थ और कल्पना का पाथेय लेकर खड़े होते हैं। कविता में शब्दों पर यति गति लय तुक का अनुशासन रहता है। कविता में गद्य की अपेक्षा शब्द विस्तार सीमित होता है। कविता में शब्द को भावो के अनुकूल नाचना पड़ता है। वातावरण के अनुकूल शब्दों का रंग रूप परिवर्तित होता रहता है। गद्य में यथार्थ चित्रण-फोटोग्राफी और पद्य में चित्रकारी के लिये अधिक अवकाश रहता है। कला और भाव सौन्दर्य के अभाव में पद्य गद्य और सभाव में गद्य पद्य की कोटि में आ जाता है। आकार मात्र से पद्य गद्य से अलग नहीं हो सकता। मार्मिक भाव सौन्दर्य से रहित पद्य को कविता का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता। इसके प्रतिकूल कल्पना, सौन्दर्य और भावों के कारण यति गति लय विहीन गद्य भी काव्य कोटि में आ जाती है।

कुछ विद्वान व्याकरण को भी गद्य और पद्य के भेद का कारण मानते हैं। पद्य की अपेक्षा गद्य में व्याकरण का अनुशासन
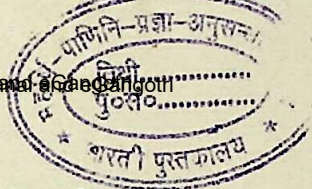
अधिक होता है। पद्य में क्रिया और कर्ता का लोप अनेक स्थानों पर मिलता है। क्रिया खोज पर ही भाव-ग्रहण की सफलता निर्भर रहती है। पर गद्य में एसे अवसरों का अभाव होता है। पद्य में विभक्तियां शब्दों में ही लीन हो जाती हैं। परन्तु गद्य में इनके लोप को इतनी स्वतंत्रता नहीं मिलती।

तुकान्त पद्य की एक विशेषता है परन्तु खड़ी बोली की आधुनिक कविताओं में कहीं कहीं तुकान्त का लोप मिलता है परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं।

इन आकार प्रकार के भेदों के होते हुये भी कविता गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है। यद्यपि गद्य और पद्य दोनों ही साहित्य के अंग हैं पर सब्र प्रकार का साहित्य कविता संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकता। छन्द के होने न होने से कविता के गुण में भेद नहीं आता। काव्य में विशेष ध्वनि की पुनरुक्ति और संगीत के संबधं के कारण छन्द की उत्पत्ति होती है फिर भी यह आवश्यक नहीं कि कविता छन्दोबद्ध ही हो। छन्दोबद्ध रचना ही को यदि कविता स्वीकार कर लिया जाये तो 'कादम्बरी' का लेखक कवि नहीं हो सकता, पर वह कवि कोटि में आता है।

इस कविता का स्वरूप निश्चित नहीं है क्योंकि कविता का आश्रय न तो कोई पदार्थ है और न कोई सिद्धान्त - वह तो एक प्रकार की मन:स्थिति है जो अधिक अधिगम्य होने पर कम विवेचनीय होती है। परिभाषित हो सकने के कारण उसका

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध स्वरूप पहचानने के लिये अन्वय-व्यतिरेक से काम लेना चाहिये, और यह देखना चाहिये कि क्या कविता है और क्या नहीं।

काव्य के अनेक प्रयोजन हैं। कविता से यश, अर्थ, उपदेश, व्यवहार कुशलता, अनिष्ट क्षति के अतिरिक्त उज्जवल परि-निवृति प्राप्त होती है। कविता अपना कार्य दो ओर सम्पन्न करती है—एक ओर तो ज्ञान आनन्द और शक्ति के नवीन साधन उत्पन्न करती है और दूसरी ओर उन स्थानों को गूंथ देती है जिससे उसमें सौन्दर्य और उज्जवलता आ जाती है। भाव की गति से सौन्दर्य वृद्धि होती है भाव ही कविता का स्थल है। भाव की इस भूमि पर कविता वह चित्र उपस्थित करती है जिसे गोचर रूप से आचरण की संज्ञा दी जाती है।

काव्य के दो विभेद हैं; प्रबन्ध और मुक्तक—प्रबन्ध बन्धन और मुक्तक स्वतंत्रता में जन्म लेता है। प्रबन्ध के प्रत्येक पद्य में गति होती है और इसी गति के बल पर प्रबन्ध का प्रत्येक पद रस परिपाक और कथा लक्ष्य की ओर चलता है। प्रबन्ध का प्रत्येक पद प्रबन्ध संचालन में योग देता है। प्रबन्ध काव्य की कथा में इसका उसी प्रकार होता है जिस प्रकार नदी में उसकी तरंगों का और जिस प्रकार नदी की धारा प्रदेश प्रदेश पर स्थानीय सौन्दर्य की विशेषता के साथ उत्पन्न होती है उसी प्रकार प्रबन्ध काव्य में रस धारा वस्तु स्थल की अद्‌भुत शोभा के साथ प्रगट होती है। यही प्रबन्ध काव्य की स्थानीय विशेषता है। और इसकी धारा को व्यवस्थित रखने के लिये कथा के

मार्मिक स्थलों की पहिचान ग्रहण और रक्षा करनी पड़ती है। कथा के मर्म स्थल जितने उचित होंगे प्रबन्ध उतना ही सुरस और प्रौढ़ होगा। यह प्रबन्ध कार की उच्चता पर निर्भर है कि वह किन स्थलों को मार्मिक समझता है। मर्म-स्थलों के वर्णन में प्रबन्ध काव्य कार को उदार सतर्क रहना पड़ता है। उसके वर्णन में माधुर्य भरना पड़ता है। प्रबन्ध के यही मार्मिक स्थल पाठक या श्रोता के मन में अंकित होकर उसे रस मग्न कर देते हैं, इसी में प्रशंसा अथवा अप्रशंसा निहित है। वास्तव में मार्मिक-स्थल ही कथा की आत्मा है और इन्हीं से प्रबन्ध सजीव रहता है मर्म-स्थलों की व्यवस्था में ही उसे सतर्क रहना पड़ता है। इन्हीं में चरित्र चित्रण और कार्य व्यापार विकसित होकर गतिवान होता है और यहीं से काव्य कार को अपने उद्देश्य की सिद्धि की प्रेरणा मिलती है।

आशा के आरम्भ से प्रबन्ध का जन्म और उद्देश्य की पूर्ति में उसका अन्त निहित है। नायक आदि में साधक और अन्त में सिद्धि हो जाता है यहीं नायक के चरित्र का विकास दिखाई पड़ता है। कथा नायक के हाथ में रहती है। वह उसे अभिलाषित दिशा में ले जाता है। अन्य पात्रों के विकास में नायक के आचरण का ही हाथ रहता है। प्रबन्ध की गम्भीरता का माप नायक का चरित्र ही है। इस लिये प्रबन्ध काव्य कार नायक के चरित्र चित्रण में विशेष सतर्क रहता है।

संक्षेप में प्रबन्ध काव्य में पूर्वापर का तारतम्य बना रहता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ,छन्द एक दूसरे से कथानक की श्रृंखला में बंधे रहते हैं, उनका क्रम परिवर्तित नहीं किया जा सकता ,एक दूसरे की अपेक्षा रहती है। चरित्र का विकास होता और प्रबन्ध काव्य में सम्पूर्ण काव्य के सामूहिक प्रभाव पर अधिक ध्यान रखा जाता है।

मुक्तक में इसकी आवश्यकता नहीं होती उसमें न कथा ही होती और न घटना ही। उसमें तो किसी भाव या परिस्थिति का चित्रण मात्र ही रहता है। मुक्तक में रस विकसित नहीं होता और न उसके कलेवर में रस विकास के लिये स्थान ही है। कभी कभी अनुमान के सहारे ही रसानुभूति करनी पड़ती है। रस की जितनी व्यापक और गंभीर अनुभूति प्रबन्ध में होती है उतनी मुक्तक में कभी नहीं हो सकती। मुक्तक में तो केवल रस के छींटे प्राप्त होते हैं। फिर भी मुक्तक में रस की तीव्रानुभूति होती है। मुक्तक अपनी संक्षिप्ता और अनुभूति के कारण केवल सभादि के काम का होता है परन्तु प्रबन्ध अवकाश और स्वाध्याय की वस्तु है। मुक्तक यदि गुलदस्ता है तो प्रबंध काव्य बनस्थली है।

प्रबंध काव्य में नायक अन्य पात्रों के सहयोग से कार्य व्यापार की रेखाओं को चित्रित करता है। इस प्रकार उद्देश्य सीमा के अन्तर्गत वातावरण विस्तृत होजाता है। चरित्र की जटिलतायें प्रकाशित हो जाती हैं। मुक्तक में रस की दृष्टि से आलम्बन और आश्रय ही होते हैं। मुक्तक में कोई घटना नहीं होती जिससे कार्य व्यापार और चरित्र का विकास हो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार रूप, गति ,क्रम , वातावरण आदि की दृष्टि से प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य में महान् अंतर है ।

प्रबंध बड़ा भी हो सकता है और छोटा भी–प्रथम महा-काव्य और द्वितीय खण्ड काव्य की संज्ञा से विभूषित किया जाता है । इस प्रकार प्रबंध काव्य के दो रूप होते हैं । जिसमें ८ से अधिक सर्ग हों वह महा काव्य कहलाता है । इसमें एक नायक होता है जो देवता या उत्तम वंश का धीरोदात्त गुणों से विभूषित पुरुष होता है । उसमें एक वंश के बहुत से राजा भी हो सकते हैं जैसे 'रघुवंश' में । श्रंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अंगी रूप से रहता है, अन्य रस गौण होते हैं । नाटक की सब संधियां होती हैं । इसकी कथा ऐतिहा-सिक या लोक प्रसिद्ध सज्जनाश्रित होती है । धर्म अर्थ काम और मोक्ष में एक उसका फल होता है । आरंभ में मङ्गलाचरण, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होता है कहीं कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों का गुण कीर्तन होता है । एक सर्ग में एक ही छन्द रहता है और अन्त में वह बदल जाता है । कहीं कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं जैसे रामचन्द्रिका में । प्रवाह के हेतु छन्द की एकता आवश्यक है । सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की सूचना रहती है । इसमें संध्या, सूर्य , चन्द्रमा ,रात्रि प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्यान्ह, आखेट, पर्वत ऋतु वन सागर, संयोग वियोग, मुनि स्वर्ग, नगर यज्ञ , युद्ध यात्रा विवाह आदि का यथा संभव पूरा पूरा वर्णन होता है । इसका नामकरण कवि के नाम, चरित्र,

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्रनायक, पात्र विशेष के नाम से अथवा स्थल विशेष के नाम से होता है। माघ, प्रियप्रवास, रघुवंश, कामायनी, साकेत, नूरजहां आदि क्रमशः इसके उदाहरण हैं। सर्ग की कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है जैसे 'संघर्ष'

हिन्दी की आधुनिक कविता में महाकाव्य संबंधी नियम टूटने लगे हैं। इसकी प्रेरणा विदेशी महाकाव्यों अथवा कवि की स्वाभाविक काव्य भावना से साहित्यिक रूढ़ियों के विरुद्ध क्रान्ति का प्रयास है।

खण्ड काव्य में प्रबंध काव्य का सा तारतम्य तो रहता है पर महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित रहता है। उसमें जीवन की वह अनेक रूपता नहीं रहती जो कि महाकाव्य में होती है। उसमें एकांकी के समान एक ही प्रधान घटना होती है। महाकाव्य अनेक देशीय और खण्डकाव्य एक देशीय होता है। खण्डकाव्य के लिये महाकाव्य का अंश होना आवश्यक नहीं है। सुदामा चरित्र, जानकी मंगल, गोरा बादल की कथा, अनघ, पंचवटी, पथिक मिलन, उद्धव शतक आदि हिन्दी के खण्ड काव्य हैं।

प्रबन्ध काव्य की परम्परा

भारतीय साहित्य में कभी भी प्रबंध काव्य का अभाव नहीं रहा। संस्कृत साहित्य में अनेकों प्रबंध काव्यों की रचना हुई। कालिदास के ग्रन्थों में 'रघुवंश' की विशेष ख्याति है।

'रघुवंश' के उपरान्त 'भारवि' के किरातार्जुनीय का नाम आता है। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। यहां अर्जुन और किरात वेष धारी भगवान शंकर के युद्ध का वर्णन है। युद्ध के फल स्वरूप अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया। श्रृङ्गार रस गौण है और द्रौपदी ने पाण्डवों को युद्ध हेतु प्रोत्साहित किया है। इसके बाद माघ के शिशुपाल बध का उल्लेख बड़े आदर से किया जाता है। इसका क़थानक भी महाभारत से लिया गया है। इसमें युधिष्ठिर के राज़सूय यज्ञ में चेदि नरेश शिशुपाल के बध की कथा बड़े कौशल के साथ वर्णित है। संस्कृत के अन्य महाकाव्यों में हर्ष का नैषध चरित्र भी उल्लेखनीय है। इस में राजा नल का चरित्र है। इसके अतिरिक्त अनेक महाकाव्य और खण्ड काव्य भी लिखे गये।

संस्कृत भाषा और साहित्य के समान हिन्दी साहित्य के किसी युग में प्रबंध काव्य का एकान्त: अभाव नहीं रहा। आदि काल से आज तक उनका तांता मिलता है और आज तो उनका स्वरूप ही परिवर्तित हो गया है। हिन्दी साहित्य का इतिहास तीन कालों में विभाजित किया जाता है :-

(१) आदि काल अर्थात वीर गाथा काल

(२) भक्ति काल – निर्गुण एवं प्रेम काव्य और सगुण शाखा

(३) आधुनिक काल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) हरिश्चन्द्र युग

(२) द्विवेदी युग

(३) प्रसाद–पतं–निराला युग

आदि काल में प्रबंध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्य लिखे गये। प्रबंध काव्य कार अपने व्यक्तित्व को उपास्य अथवा आश्रयदाता के व्यक्तित्व में लीन कर देता था। इस युग में लोक भावना का आधिक्य था फिर भी कविता राज्याश्रित ही थी। कवि धन लोलुप नहीं थे वरन अपने आश्रय दाता के साथ युद्ध भूमि में भी जाते थे। यदि आज की सी राष्ट्रीय भावना कवियों में दृष्टि गोचर नहीं होती पर वे राज्य के लिये जीवन बलिदान करने के लिये सर्वदा प्रस्तुत रहते थे। इस युग के कवियों की लेखनी और असि दोनों ने अपने स्वामी की सेवा की। ऐसे ही कवि प्रबंध काव्य लिखने की क्षमता रखते थे, और इसी कारण उनके वर्णनों में सजीवता और भावुकता है। वीर गाथा काव्य में वीर प्रबंध लिखे गये जिनका नायक लौकिक वीर होता था। नायक वीर और नायका श्रृङ्गार रस का आश्रय रहीं। युद्ध वर्णन वीर गाथायों की विशेषता है। युद्ध का कारण जहां स्त्री नहीं वहीं भूमि बन गई। इनमें राजसी ठाठ बाट और नायिका सौन्दर्य वर्णन भी मिलता है। इस युग के प्रबंध काव्यों में चन्द का पृथ्वीराजरासों विशेष उल्लेखनीय है। यह पृथ्वीराज केन्द्रित है।

भक्ति कालीन प्रबंध गाथाओं का दृष्टिकोण ही परिवर्तित

हो गया। निर्गुण पंथियों में कबीर आदि ने प्रबंध काव्य की रचना की ही नहीं। वे ईश्वर को अपने मन में ही खोजते थे और उनका उद्देश्य किसी व्यक्ति विशेष की उपासना नहीं था। वे अवतार वाद में विश्वास नहीं रखते थे और न राजा के ही आश्रित थे जिसके गुण गान के लिये व अपने को भूल जाते। वह प्रेम का विषय तो बन सकता था किन्तु लौकिक महाकाव्य का विषय बनने के अयोग्य था। इस लिये संत काव्य उपनिषदों का स्वर लेकर मुक्तक रूप में ही विकसित हुआ। इसके प्रतिकूल प्रेम काव्य में प्रबंधों ही की रचना हुई। सूफियों ने निगुण की अभिव्यक्ति के लिये लौकिक कहानियों का आश्रय लिया और रूपक का सहारा लेकर अलौकिक आलम्बन की ओर संकेत किया। इन प्रेम कथाओं में श्रृङ्गार रस की अभिव्यक्ति करा के अलौकिक प्रेम का पुट देदिया। इन प्रेम प्रबंध काव्यों के सभी अवयव भारतीय हैं केवल प्रेम पद्धति और शैली मसनवियों जैसी है। इन सूफियों का प्रेम विरहाकुल है। इस प्रेम मार्गी शाखा के प्रमुख कवि जायसी संसार से विमुख नहीं थे। वे लोक और परलोक की साधना में लीन थे इसी कारण से पद्मावत में आपने शेरशाह की भी वन्दना की है। जायसी मुसलमान थे पर आप भारतीय संस्कृति से पूर्ण परिचित थे। भारतीय अंतरकथाओं और परंपराओं का पूर्ण उल्लेख मिलता है। कथा का निर्वाह सुन्दर है। भाषा और शैली में एक रसता है।

सगुण धारा के अन्तर्गत अनेक प्रबंध काव्यों की रचना हुई। इसकी दो शाखाएँ प्रस्फुटित हुई थी :—

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) कृष्णाश्रयी
(२) रामाश्रयी

कृष्णाश्रयी कवियों ने अपने इष्टदेव का माधुर्य पक्ष ही लिया था और इस हेतु उनका मन गीतात्मक मुक्तकों के रचने में ही अधिक रमा। गीति काव्य के लिये ब्रजभाषा उपयुक्त भी थी। श्रीकृष्ण के लोक पक्ष के होते हुए भी आपका माधुर्य पक्ष अधिक प्रभावोत्पादक था। इसलिये कृष्णोपासक कोई भी कवि महाकाव्य की रचना नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त कृष्ण कवियों ने अपने कृष्ण के बाल रूप का ही चित्रण किया है। इनमें साम्प्रादायिकता अधिक थी। गीतों के मोह ने उन्हें मुक्तक से स्वतंत्र न होने दिया।

रामाश्रयी शाखा में महाकवि तुलसी हुये। राम काव्य के नायक के जीवन में अनेक रूपता थी जो प्रत्येक कवि को महाकवि बनाने की क्षमता रखती थी। आपने अपना महाकाव्य अपने नायक की भाषा अवधी ही में लिखा। तुलसी को उत्तराधिकार में प्रबंध काव्य मिला था। उसमें दोहा चौपाई शैली का प्रयोग किया गया था। प्रबंध काव्य अवधी भाषा की प्रकृति के अनुकूल अधिक है। इसलिये तुलसी ने इसी शैली और भाषा में रामचरित्र को गाया। राम-चरित-मानस आर्दश प्रबंध काव्य है।

रामचरित-मानस के आधार पर केशव दास ने प्रबंध काव्य के रूप में रामचन्द्रिका की रचना की परन्तु उसमें मुक्तक

की सी स्फुटता दिखाई देती है । कथा निर्वाह के स्थान पर अलंकार,छंद और पांडित्य प्रदर्शन ही अधिक है । राम के जीवन में जो मार्मिकता थी वह केशव न पहिचान पाये । इन छंदों और अलंकारों के प्रधान्य के कारण कथा की गति कुंठित होगई । विषय की दृष्टि से रामचन्द्रिका भक्ति काव्य है और शैली की दृष्टि से रीति काव्य है ।

रीति काल में पहले तो प्रबंध काव्य लिखे ही नहीं गये और जो कुछ लिखे भी गये उनमें प्रबंध तत्व का अभाव था । रीति काल में कविता जनता की वस्तु नहीं थी । उसको राजाश्रय मिल गया था । कवियों में वीरोल्लास के स्थान पर भोगविलास ने आसन जमा लिया था । कोई राजा भी ऐसा नहीं था जो प्रबंध काव्य का नायक हो सके । केवल भूषण में इतनी शक्ति थी पर वे समय के प्रवाह में स्थिर न रह सके । उन्होंने मुक्तक लिख कर ही अपने कवित्व की इतिश्री समझी । इस काल के काव्यों में वर्णनों का ही वाहुल्य है ।

आधुनिक काल में प्रबंधों को अधिक प्रोत्साहन अवश्य मिला परन्तु मुक्तकों जैसा नहीं । आदि में हरिश्चन्द्र तथा आपके अनुयायियों ने मुक्तक को ही अपनाया । उन पर अष्ट-छापके कवियों का अधिक प्रभाव था । उनका ध्यान देश भक्ति, समाज सुधार और नाटकों की उन्नति में अधिक लगा । भारतेन्दु युग में कोई भी प्रबंध काव्य न लिखा जा सका ।

द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता के कारण लेखकों का ध्यान,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन आदर्शों की ओर गया। भारत के आदर्श राम और कृष्ण के चरित्रों में सजीव थे। उनका स्थाई रूप पाश्चात्य बुद्धिवाद मिटा नहीं सका। भक्तिवाद में बुद्धिवाद का पुट देकर गुप्त जी और हरि औध जी ने राम तथा कृष्ण के चरित्र 'साकेत' और 'प्रियप्रवास' में अंकित किये। हरि औध जी के कृष्ण कर्त्तव्य-परायण लोक सेवक और लोक आदर्श हैं किन्तु गुप्त जी के राम ईश्वर हैं। इनके साथ ही काव्य की दो धारायें होगई। पुरानी धारा और नवीन धारा। पुरानी धारा में ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है और नई धारा में खड़ी बोली का। पुरानी धारा में स्व० पं० रामचन्द्र ने अपना प्रसिद्ध बुद्ध चरित्र लिखा जिसमें भाषा तथा वर्णन दोनों की सुन्दरता प्रशंसनीय है। इसके बाद रामचरित निकला और उसके बाद हरदयाल ने 'दैत्य वंश' नामक महाकाव्य की रचना की। उसमें कई राजाओं का चरित है परन्तु काव्यकारों को अधिक सफलता नहीं मिली।

खड़ी बोली में सब से प्रथम अतुकान्त संस्कृत छंदों में 'प्रियप्रवास' नामक प्रबंध काव्य की रचना की। प्रियप्रवास में प्राचीन कृष्ण कथा को नवीन दृष्टिकोण से नवीन भाषा और नवीन छन्दों में लिखा है। परन्तु कवि के वर्णन इतने मार्मिक नहीं हैं कि वे पाठक को अधिक देर तक रमा सकें। आपने लीला मयी राधा को लोक सेविका का रूप अवश्य देदिया है परन्तु राधा के स्वाभाविक माधुर्य की रक्षा नहीं कर सके।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'साकेत' भी एक नये दृष्टिकोंण

से लिखा। इस काव्य के नायक और नायिका लक्ष्मण और उर्मिला हैं। इसमें रीति कालीन, और छायावादी पद्धति का प्रयोग है। गीति शैली में लिखा गया है। अनेक दृष्टियों से यह 'प्रियप्रवास' से बढ़ कर था परन्तु प्रबन्ध काव्य का पूर्ण विकास नहीं था।

गुरुभक्त सिंह ने 'नूर जहां' और विक्रमादित्य नामक महा काव्यों की रचना की है। नूरजहां में सौन्दर्य की प्रतीक नूरजहां का सलीम (जहांगीर) से विवाह तक की कथा का वर्णन है। विक्रमादित्य महाकाव्य में चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी की प्रणय कथा का उल्लेख है। इन दोनों महाकाव्यों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर मेल है। नूरजहां में नारी की परवशता, स्थिति निर्भरता, कोमलता, भीरुता और सरलता का उल्लेख है। नूरजहां खड़ी बोली का उत्कृष्ट काव्य है।

हल्दीघाटी-और जौहर—वीर रस के प्रधान कवि श्री श्याम नारायण ने मेवाड़ केशरी और चित्तौड़ के महाराणा रत्न सेन और पद्मावती की गाथा को काव्य मय रूप दिया है। आपकी कविता विकास हल्दी घाटी में देखने को मिलता है। उत्साह की व्यञ्जना और युद्ध वातावरण से पूर्ण यह काव्य समयानुकूल है। ऐसा सजीव वर्णन कम देखने को मिलता है। जौहर में वीरोल्लास के साथ साथ करुण रस का सुन्दर सामंजस्य है। कथा का प्रौढ़ निर्वाह, प्रसंगानुकूल छंद संगीत और भावानुकूल पदावली से युक्त है। वीर गाथा के आधुनिक युग के आप श्रेष्ठ कवि हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीयुत अनूप शर्मा ने सिद्धार्थ की रचना की इसमें बुद्ध के जीवन का आद्योपान्त वर्णन है। इसमें शान्त रस की निष्पत्ति हुई है। नायक के चरित्र के सिवा अन्य पात्रों का चरित्र विकास नहीं हो पाया है। चरित्र के साथ साथ व्यापार का भी अभाव है। इस काव्य में यशोधरा प्रकाश में तो आई परन्तु अधिक नहीं। राहुल भी उपेक्षित ही रहा। यशोधरा के विरह वर्णन में संचारी भावों का ही वाहुल्य है स्थायी भाव रस का रूप न ले सका। हंस को दूत बनाने में मेघदूत का अनुकरण किया गया दिखाई देता है। काव्य की भाषा संस्कृत गर्भित है। संस्कृत छंद द्रुतबिलम्बित, बसंततिलका, मन्दाक्रांता, मालिनी आदि छंदों का प्रयोग किया है। प्रबंध की दृष्टि से यह अनूठा 'महा काव्य है। आपने एक और महा काव्य की रचना की है जो मुक्तक छंद में होते हुये भी प्रबंधात्मक रूप लिये हुये है। यह रचना 'सुमनाञ्जलि' है।

मोहनलाल मेहतो, 'वियोगी' ने मुक्तकों के अतिरिक्त अतुकान्त स्वतंन्त्र छंद में 'आर्यावर्त' की रचना की। 'आर्यावर्त' में पृथ्वीराज और गौरी के युद्ध का वर्णन है। आज तक जयचंद को देशद्रोही समझा जाता था। परन्तु आपने इतिहास और कल्पना का पुट देकर जयचंद के इस कलंक को दूर करने का प्रयत्न किया है। "अपने रक्त से धो दूंगा कलंक आर्यभूमि का" शब्द हमें जयचंद के ही मुख से सुनाई पड़ते हैं। वियोगी जी का यह अनूठा और पूर्ण सफल महाकाव्य है।

प्रसाद जी की 'कामायनी' में खड़ी बोली का चमर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। कामायनी प्रसाद जी की अपूर्व मौलिकता का प्रतीक है। उसका कथानक, वर्णन, भाषा, छंद अलंकार और कल्पना सभी सुन्दर और मनोरंजक हैं। कवि कथा का सांकेतिक अर्थ समझा कर जीवन को साक्षातकार करा देता है। प्रबंध काव्य के क्षेत्र में 'प्रसाद' का यह नया प्रयास है। निःसन्देह कामायनी खड़ी बोली का सर्वश्रेष्ठ महा काव्य है और उसका परिगणन राम-चरित-मानस जैसे अमर ग्रंथ के साथ होना चाहिये।

इधर काशी से ध्रुव चरित्र नाम से 'प्रिय प्रवास' की शैली पर प्रबंध काव्य की रचना हुई है।

पंडित बलदेव मिश्र ने 'साकेत संत' में भरत जी के चरित्र को महत्ता प्रदान की है। भरत आदर्श भाई थे उन्हें राजमद छू तक नहीं गया था। राज्य ठुकरा कर आपने भारतीय मर्यादा का सजीव उदाहरण रखा। इसमें भारत की अखंण्ड सांस्कृतिक एकता और उसकी संरक्षण की पुकार है जो देश की विभाजन संबंधी समस्याओं की प्रतिध्वनि है। रचयिता एक राष्ट्रता में विश्वास करता है।

भरत के पावन चरित्र के साथ माण्डवी के चरित्र का दिग्दर्शन कराया है। उसके तप त्याग की सुन्दर झलक दिखाई है। कमल जल में रहकर भी जल से निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार माण्डवी के पास रहने पर भी भरत उस के पास नहीं आये। इस प्रकार माण्डवी की विरह व्यथा उर्मिला की विरह व्यथा से किसी प्रकार कम नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रंथ में गान्धी वाद के भी दर्शन हो तेहैं ।

इस युग के महाकाव्यों में विचारात्मकता का अधिक प्रभाव दिखाई देता है । कथानक विचारों का आश्रय बन जाता है । 'कुरुक्षेत्र' में 'दिनकर' ने युद्ध की अनिवार्यता पर बल दिया है । आपका विचार है अहिंसा जभी सफल हो सकती है जब संसार से मद मात्सर्य और हिंसावृति का लोप होजाये अन्यथा युद्ध आवश्यक है । सम विभाजन ही शान्ति का स्थापक हो सकता है ।

अभी हाल ही में "जन नायक" महाकाव्य की रचना हुई है । इसमें गांधी जी के जन्म से लेकर अवसान तक का कथानक संग्रहीत है । भाषा खड़ी बोली है । भावुकता का वाहुल्य है ।

श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र जी ने 'कृष्णायन' में कृष्ण चरित्र को प्रबन्ध काव्य के रूप में उपस्थित किया है । आपने कृष्ण के ब्रज, मथुरा और द्वारिका के जीवन को एक सूत्र में बांध कर नायक के चरित्र की अनेकरूपता के दर्शन कराये । आपने प्रबन्ध काव्य की स्वाभाविक भाषा अवधी और दोहा, सोरठा और चौपाई वाली शैली ही को अपनाया है भावुकता के स्थान पर कर्त्तव्य परायणता को स्थान मिला है । ब्रज वर्णन और मथुरा वर्णन पर अन्धे सूर की पूर्ण छाप है फिर भी ब्रजभाषा का सा माधुर्यपूर्ण बालवर्णन आप नहीं कर सके । कृष्ण के चरित्र को एकत्रित कर देने के लिये आपका सदा स्मरण किया जायेगा ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त भी प्रबंध काव्य लिखे गये जिनमें यशोधरा वैदेहीबनवास आदि उल्लेखनीय हैं। इन प्रबंधों के साथ साथ खण्ड काव्यों की भी रचना हुई अनघ, पंचवटी, नहुर्ष, पथिक, मिलन, उन्मुक्त विशेष उल्लेखनीय हैं।

वर्त्तमान युग की परिस्थितियां प्रबंध काव्य के तनिक भी अनुकूल नहीं हैं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं ने भारतीय को अनिश्चित बना दिया है। उसमें धैर्य, तन्मयता और साहस का अभाव है। इसके साथ ही प्रबंध काव्य योग्य आदर्शों का भी अभाव है। युग परिवर्तन शील है और इस परिवर्तनशीलता के कारण प्रबंध काव्य लिखने के लिये जिस दृढ़ता की आवश्यकता है वह आधुनिक कलाकार में दृष्टिगोचर नहीं होती। गीतों की बाढ़ सी आई हुई है पर प्रबंध काव्य की दृष्टि से हिन्दी का भविष्य का इतिहास निराशोत्पादक है। प्रस्तुत ग्रंथ में आधुनिक खड़ी बोली के प्रियप्रवास, साकेत, नूरजहां, झांसी की रानी, आर्यावर्त्त, हल्दी घाटी और भैरवी प्रबंध काव्यों के अंश उदाहरण स्वरूप लिये गये हैं।

प्रियप्रवास :—

इस महाकाव्य के लेखक हरिऔध सिद्धहस्त लेखक और महाकवि थे। आपने काव्य क्षेत्र में नवीन कल्पनाओं की सृष्टि की। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। 'प्रियप्रवास' के अतिरिक्त आपने वैदेही बनवास नाम का दूसरा महाकाव्य भी लिखा जो प्रियप्रवास जैसा नहीं बन पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियप्रवास आपका कीर्तिस्तम्भ है। भाषा, भाव, शैली और वर्णन की दृष्टि से यह स्वाभाविक माधुर्य लिये हुये है। इस में श्रीकृष्ण के जीवन की मधुर झाँकी नये ढंग से प्रस्तुत की गई है। इसका विषय कृष्ण की मथुरा यात्रा है। इसीलिये प्रियप्रवास इसका नामकरण हुआ है। इस मथुरा यात्रा की कथा के साथ साथ अवसर आने पर हरिऔध जी ने कृष्ण की अन्य ब्रज लीलाओं का भी समावेश किया है। प्रिय प्रवास की अपनी विशेषतायें हैं। इसकी सब से बड़ी विशेषता तो इसका संदेश है। लेखक नें इसके द्वारा भारतीयों को समाजसेवा, स्वार्थत्याग, विश्वप्रेम, परोपकार, देशसेवा आदि अप्रतिम भावनाओं का संदेश दिया। उदासीनता और वियोग के धरातल पर इन कल्याणकारी भावनाओं की जैसी व्यंजना कृष्ण और राधा के रूप में हुई वह अपने में महान और काव्यानन्द से परिपूर्ण है।

दूसरी विशेषता यह है कि इतने अल्प कथानक के बल पर इसनें इतना दीर्घरूप धारण किया। जिस श्रेष्ठ भावना से आपने इस काव्य की रचना की उसका निर्वाह अन्त तक किया। इसके अतिरिक्त आपके कृष्ण अवतार नहीं पर महा पुरुष हैं। इससे भी महत्वशाली बात यह है कि राधा और कृष्ण के हृदय में तुल्यानुराग की व्यवस्था की गई है इस प्रकार का संतुलन सब से पहले प्रियप्रवास ही में देखने को मिलता है।

कृष्ण कथा का मुख्याधार श्रीमद्भागवत का दशम अध्याय है। हिन्दी में कृष्ण की लीलायें वहीं से प्रवाहित हुईं। विद्या-

पति से द्वारिका प्रसाद मिश्र तक सभी कवियों नेअप ने अपने दृष्टिकोण से राधा और कृष्ण को नवीन रूप प्रदान किया है।

हिन्दी में राधा की सृष्टि सब से पहले विद्यापति की पदावली में दीख पड़ती है। आपकी राधा सौन्दर्य, प्रेम और विरह व्याकुलता की प्रतिमा हैं। राधा और कृष्ण मिलन में प्रेमावेग ही का वाहुल्य है।

सूर की राधा का हृदय अनुरागमय और विरह कातर है। लीलामयी के साथ साथ सूर ने उसे कृष्ण की शक्ति के रूप में भी अंकित किया है। यह सूर को धर्म की अन्य पुस्तकों से प्राप्त हुआ है क्योंकि भागवत में राधा का उल्लेख भी नहीं है। सूर के भ्रमरगीत में प्रियप्रवास का कथानक प्राप्त हो जाता है। भ्रमरगीत गोपियों के विरह जीवन में उनके प्रौढ़ और तीव्र प्रेम की व्यजंना है। यहाँ प्रेम के सम्मुख ज्ञान को हेय बतलाया है तथा नारी की कोमलता के हेतु असहनीय चित्रित किया है। निगुर्ण ज्ञान गोपाल उपासकों के लिये अस्वाभाविक सिद्ध किया गया है। सूर की गोपियाँ स्नेह से पूर्ण होने के साथ साथ व्यंगमयी भी हैं फिर भी उनमें सरलता और दीनता का अभाव नहीं है।

नन्ददास की गोपियाँ तर्क शीला हैं। वे अपने तर्कों से उद्धव को चुप कर देती हैं। और हृदय की विजय प्रमाणित करती हैं। ज्ञान और प्रेम के संघर्ष में 'रत्नाकर' ने भी प्रेम की विजय दिखलाई है। उद्धव के ज्ञान का गर्व चूर्ण हो जाता है तथा गुरू शिष्य बन जाता है। रत्नाकर की गोपियाँ सरल और चतुर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों हैं। विवशता भी है और वाक्पटुता भी, और विनोद भी। यही गुप्त जी ने द्वापर में भरने की चेष्टा की है पर यहां एक नवीन सजीवता के दर्शन होते हैं।

हरिऔध जी ने इसी विषय को भिन्न दृष्टिकोण से ग्रहण किया है। सूर के कृष्ण की कठोरता का आपने परिहार कर दिया है। आपके कृष्ण सरस हैं। वे देवता नहीं मानव हैं। प्रेम की अपेक्षा कर्त्तव्य प्रिय अधिक है। व्यक्ति प्रेम से विश्व प्रेम महान् है। लोक सेवा उनका आदर्श है इसीलिये वे मथुरा से लौट कर नहीं आये। आपकी गोपियाँ तर्क-कुशल नहीं हैं। वे निरीह अबला हैं। योग के भार को संभालने में असमर्थ हैं। राधा आदर्श महिला है उसमें प्रेम व्याकुलता है पर संयत रूप में। संयम उसके जीवन का अंग है। व्यक्तिगत कल्याण से परे उसकी इच्छा सामुहिक कल्याण की ओर है।

"महाकाव्य का लेखक भले ही महाकवि कहा जाये पर न्याय की दृष्टि से महाकवि वही है जिसने युग की संस्कृति को अत्यन्त सरस स्वरों की वाणी दी हो और जिसने मानव उत्कृष्टतम प्रवृतियों और गम्भीरतम् अनुभूतियों को प्रभावशाली ढंग से व्यंजित किया हो, चाहे उसने एक भी महाकाव्य की सृष्टि न की हो।"

महाकाव्य के सभी लक्षण प्रियप्रवास में नहीं हैं। रूढ़ियों का परित्याग करके स्वतंत्र बुद्धि का परिचय कवि ने दिया है। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से महाकाव्य, महाकवित्व होना

चाहिये उसका उद्देश्य समाज के लिये स्वस्थकर कल्पवृक्ष के समान हो। प्रिय प्रवास में १७ सर्ग हैं, कथानक पौराणिक है, कृष्ण और राधा धीरोदात्त नायक और नायिका हैं, वात्सल्य और करुण रस का संचार है, काम की सिद्धि है, नगरी, सरिता, षड़ऋतु दिवस रात्रि आदि के अनेक सुन्दर वर्णन हैं। सर्ग में एक से अधिक छंदों का प्रयोग है, सर्गों में संगठन होते हुये भी नाटकीय संधियों का अभाव है। अन्त में आगामी सर्ग की सूचना नहीं है। मङ्गलाचरण का अभाव है। प्रबंध का सूत्र सातवें सर्ग से ही टूट गया है। सत्रहवें सर्ग तक रुदन चलता रहता है। वर्णन सभी आजाते हैं पर प्रबंधात्मकता नष्ट हो जाती है।

उपरोक्त परिभाषा को दृष्टि में रखकर तथा प्रियप्रवास के प्राकृतिक दृश्यों का विशद वर्णन,विषय के नाम पर नाम संस्करण, और प्रत्येक सर्ग एक विषय को लेकर सामने आया है। उसका सन्देश महान् है। इसलिये सभी लक्षणों की पूर्ति न होते हुये भी प्रिय प्रवास एक महाकाव्य है।

इसमें अनेकों संस्कृत छन्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा संस्कृत गर्भित खड़ी बोली है और उसमें कोमलता भरने का पूर्ण प्रयत्न किया है। कहीं कहीं ब्रजभाषा और उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। अलंकारों का भी खूब प्रयोग किया है।

चरित्रों में सबसे सुन्दर चरित्र राधा का चित्रित हुआ है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राधा कुमारिका है, प्रेमिका है पर संयत प्रेम वाली । मर्यादा का पूरा ध्यान रखा है राधा के सम्मुख विरह सागर है, वह व्याकुल है पर कृष्ण दर्शन के लिये । वह जीवन भर कुमारी रहने के लिये व्रत को धारण कर लेती है । वह लोक सेविका है और अपने इस सेवा व्रत में उसे यह अनुभव ही नहीं होता कि यौवन कब आया और कब चला गया । कर्त्तव्य परायणता ही उसका जीवन है ।

साकेत :—

राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त आधुनिक युग के लोक प्रिय कवि हैं । देश भक्ति ,राष्ट्रीयता, उच्चादर्श और सामाजिक अशान्ति का राग अलापने के कारण आप युग प्रतिनिधि कवि हैं । आप प्राचीन भारतीय संस्कृति और गौरव के प्रयासी हैं । आप जनता में प्राण फूंकने वाले कवि हैं ।

साकेत खड़ी बोली का अनमोल प्रबंध काव्य है । इसने हिन्दी को यश प्रदान किया है । इसमें राम गाथा ही है पर दूसरा रूप लिये हुये । यहां राम भावना के साथ साथ कवि उर्मिला को भूला नहीं है । भावुक कवि उसकी चिन्ता क्यों न करते । उन्होंने देखा कि उर्मिला १४ वर्ष तक पति से विलग होकर दूर साकेत में वियोग की पीड़ा और आघातों को सहन कर रही है । यही अवस्था यशोधरा की भी थी । कवि ने अपने हृदय के श्रवणों से दोनों की मूक वेदनायें सुनी और उनके शील और त्याग को प्रकाशित करने का प्रण किया । यहां उन्होंने यह चिन्ता नहीं की कि इस मार्ग का अनुसरण करने में मुझे सफलता भी प्राप्त होगी या नहीं ।

गुप्त जी ने उर्मिला को अपने काव्य की नायिका बनाया उसी प्रकार उन्होंने साकेत को भी प्रमुखता प्रदान की है। साकेत में ही सारी घटनायें घटित होती हैं। साकेत में संजीवन बूटी मंगा दी गई, राम की वनयात्रा की कथा शत्रुघन के मुख से साकेत में ही कहलवा दी गई।

साकेत में ही वशिष्ठ के योगबल लंका में राम विजय दिखला दी गई। कदाचित् विवश होकर ही कवि चित्रकूट गया है वह भी इसलिये कि केकई के दोष का परिमार्जन करने के लिये। कथा का आरंभ अयोध्या कांड से होता है पर किसी काण्ड की कथा छूटने नहीं पाई है। उर्मिला के विरह-वर्णन के साथ साथ आपने सारे मानस की कथा ही कह डाली है। साकेत के प्रथम आठ सर्गों में अयोध्या काण्ड की कथा है। दशम में बाल काण्ड की कथा उर्मिला सरयु से कहती है। एकदश सर्ग में अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर और आधे लंका काण्ड की कथा है जिसके वक्ता शत्रुघन और हनुमान हैं। लंका काण्ड की शेष कथा को वशिष्ठ मुनि अपने योग बल से १२ वें सर्ग में आकाश पट पर दिखा देते हैं। राम राज्य का वर्णन शत्रुघन कर देते हैं। नवम सर्ग में उर्मिला का विरह वर्णन है। साकेत यदि कहीं भी असफल दिखाई देता है तो अपने इस विरह वर्णन में। गुप्त जी संयोग वर्णन में अधिक सफल हुये हैं। साकेत प्रथम और अन्तिम सर्ग में उर्मिला और लक्ष्मण के मिलन स्थल अत्यन्त सजीव हैं पर विरह-वर्णन की असफलता ने सारे साकेत रूप ही को नष्ट कर दिया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकेत महाकाव्य है। यहां पर महाकाव्य के सभी लक्षण संकलित किये गये हैं। आदि में मङ्गलाचरण है, कथा पौराणिक, नायक लोक प्रसिद्ध है। १२ सर्ग हैं, प्रत्येक सर्ग का एक छंद है और सर्ग के अन्त में छंद बदल गया है। नवम सर्ग इसका अपवाद है, इसमें अनेक छंदों का प्रयोग है। प्रधान रस वियोग शृंगार है, वीर और करुण सहयोगी रुप से मिलते हैं। काव्य का फल धर्म है। नगर, पर्वत, सरिता, प्रभात, सन्ध्या, रजनी, षडऋतु, रणप्रेम आदि का सुन्दर वर्णन है। देश प्रेम, नारी गौरव, जड़वाद, उपयोगितावाद आदि पर कवि ने व्याख्यानों का समावेश किया है इन सब के होते हुये गुप्त भी पूर्ण सफल नहीं कहे जा सकते।

किसी भी महाकाव्य के लिये कथानक, संबन्ध-कौशल, चरित्र चित्रण, दृश्य वर्णन और रस की आवश्यश्यकता होती है। महाकाव्य के भार को संभालने के हेतु कथानक विस्तृत होना आवश्यक है। सांकेत के ११ वें सर्ग का कथानक प्रबंध क्षेत्र में जुड़ा हुआ सा प्रतीत होता है। स्थान स्थान पर लम्बे लम्बे वर्णन द्वारा स्वाभाविक गति में व्याघात पहुंचा है। हनुमान का लम्बा वर्णन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। नवम सर्ग में भी इसी प्रकार की अस्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है।

गुप्त जी ने लक्षमण और उर्मिला के प्रेमालाप से साकेत का प्रारम्भ किया है। और आपका विचार इन्ही को नायक नायिका बनाने का था। परन्तु वे इसमें सफल नहीं हो सके। राम ही उनके काव्य के नायक हुये। काव्य का उद्देश्य आर्य

सभ्यता की प्रतिष्ठा है । सभी सर्गों में राम की गाथा चलती रहती है । राम सीता के परिणय पर ही लक्षमण उर्मिला का विवाह अवलंबित है । राम नायक, उर्मिला नायिका है इससे प्रबंध स्थिति बड़ी विषम हो गई है ।

साकेत का चरित्र चित्रण भी अभिनव रंग लिये हुये हैं । कौशल्या ममत्व की मूर्ति हैं, किन्तु वह निर्मल, गंभीर और निस्पृह है। कैकेयी कुटिलता की मूर्ति नहीं है । रावण सहृदयता लिये हुये है । सुमित्रा वीर माता है । लक्षमण कुछ क्रोधित वृत्ति लिये हुये हैं । सबसे सुन्दर चित्रण कैकेयी का हुआ है । यहां भावुकता और मनोवैज्ञानिकता का परिचय प्राप्त हुआ है । यही नहीं स्त्रियोचित और जातिगत भावनाओं का आपने चित्ताकर्षक बर्णन किया है। नारियों के त्यागमय जीवन और दयनीय दशा के मार्मिक चित्र अंकित किये हैं ।

गुप्त जी के संयोग वर्णन बड़े मार्मिक, सजीव और सुन्दर हैं। विरह-वर्णन भी असुन्दर नहीं है । कहीं कहीं उर्मिला के विरह-वर्णन में सुन्दर भाव दिखाई देते हैं । वियोगिन उर्मिला की सहानुभूति पशु-पक्षियों तक विस्तृत हो गई है । नवम सर्ग साकेत के प्राण हैं । इस विरह वर्णन में रीति कालीन कवियों की परिपाटी का परिचय मिलता है । चित्रकूट, बादल, नदी, किसान, किरण आदि के वर्णन प्रबंध में घुलमिल नहीं सके हैं ।

प्रकृति चित्रण में वस्तुओं का उल्लेख मात्र है । वन और प्रभात वर्णन इसी प्रकार के हैं । प्रकृति मानवीय भावों को

गहरा भी बनाती है और परिस्थितियों से प्रभावित भी होती है। यहीं कवि की भावुकता का पता चलता है। उर्मिला के विरह वर्णन में षट्ऋतु वर्णन का आभास मिलता है।

साकेत में समय की छाप लगी है। गांधीवाद से वह प्रभावित है। जनता की भावना, लोकमत विनत विद्रोह ,देश प्रेम आदि प्राचीन कथानक को आधुनिक रंग से रंग देती हैं।

गुप्त जी 'कला कला के लिये' वाले सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। आपके लिये कला जीवन के लिये है। वे आदर्श में विश्वास करते हैं यथार्थ में नहीं।

साकेत प्राचीन और नवीन का मिश्रण है। इसकी शैली नाटकीय है, भाषा परिमार्जित और व्याकरण सम्मत है। प्रसाद गुण का वाहुल्य है, संवादों की सुन्दर योजना है, संवाद सरस, मधुर और तर्क पूर्ण हैं। गुप्त जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी होने पर भी नवीन है।

नूरजहां :—

गुरु भक्त सिंह, भक्त ने प्रकृति संबन्धी कविता करके मुक्तक काव्यकारों में ख्याति प्राप्त करली थी। वनश्री आपकी ऐसी ही कविताओं का संग्रह है। पर आपकी विशेष ख्याति नूरजहां और विक्रमादित्य महाकाव्य के कारण हुई। सलीम की प्रेयसी को संसार ने सौन्दर्य का प्रतीक माना है। 'नूरजहां' में उसी के जीवन का काव्य मय वर्णन है।

'नूरजहां' की कथा ऐतिहासिक है। जब तक इतिहास में सलीम का नाम रहेगा तब तक नूरजहां का नाम भी अमर रहेगा। नूरजहां का वास्तविक नाम मेहरून्निसा था वह गयास की कन्या थी। गयास ईरान का एक अमीर व्यक्ति था। दुर्भाग्य से वह निर्धन होगया। सारा जेवर तक पेट की ज्वाला शान्त करने में व्यय होगया। अतएव देश छोड़ने की बात सामने आई। इस पर गयास सहमत नहीं होता था। वह देश को छोड़ना नहीं चाहता था परन्तु प्रियतमा के आग्रह के सम्मुख देश मोह को त्यागना ही पड़ा। भारत उस समय सोने का देश प्रसिद्ध था इसलिये गयास अपना शेष जीवन व्यतीत करने के लिये भारत की ओर चल दिया।

गयास ने एक काफिले का साथ पकड़ लिया। मार्ग के दुःखों को सहन करते, उठते बैठते काफिले ने एक मंजिल पार की। आगे का मार्ग विकट था और भी भयंकर था उस स्त्री के लिये जो सुकुमारी और गर्भवती थी। मार्ग में अचानक अफगान लुटेरों ने काफिले पर आक्रमण किया। गयास ने बड़ी वीरता से लुटेरों को भगा दिया। विपत्ति का सामना करते हुये काफिला कंधार पहुंचा। गयास और बेगम पर नई आपत्ति आ पड़ी। प्रसव पीड़ा से व्याकुल होकर बेगम रुक गई और गयास किंकर्तव्यविमूढ़ होगया। बेगम के गर्भ से कन्या का जन्म हुआ और अपनी असहाय अवस्था में कन्या को वहीं वन में पड़ी छोड़ कर चले गये। एक उदार सरदार उस अनाथ कन्या को देख कर चकित होगया और उसका हृदय

दया से उमड़ आया । उसे लेकर वह कंधार आया और उसे एक शिशु वियोगिनी महिला को सौंप दिया ।

भारत में अकबर का पुत्र सलीम अब यौवन में प्रवेश कर चुका था । विलास की सारी सामग्री राज महल में प्रस्तुत थी । केलिशाला ऐसी थी कि देख मन फिसलता था । इसी वातावरण में राजकुमार पल रहा था । अन्तःपुर में कोई न कोई क्रीड़ा होती रहती थी । उन्हीं अन्तःपुर की परियों में एक अनार कली भी थी । वह यौवन में पदार्पण कर चुकी थी । सांचे से ढली हुई देह के अंग अंग से माधुरी टपक रही थी। नृत्य करते समय वह दर्शकों के नेत्रों को जादू से भर देती थी । सलीम उस पर मंत्र मुग्ध सा हो रहा था । एक दिन अकबर ने दोनों की यौवन क्रीड़ा का रहस्य आंखों से देख लिया । और वह गरज कर बोला

····सलीम यह क्या ?

तू इस कदर होगया है बेडर ।

'अनार' तू और ऐसी लीला ?

शाही शयनागारों में विलास करने वाली अनार कली बंदी गृह में डाल दी गई । उसके हृदय से आहें निकलने लगी । काल नें उसकी सुख निद्रा नष्ट करदी । 'कल वह तलवार के घाट उतार दी जायगी ।' यह सोच कर उसने सब आशाओं को त्याग दिया। उसके हृदय में केवल एक ही इच्छा थी कि अन्तिम समय प्रियतम सम्मुख हों । जब काल से बचने की कोई आशा न रही

तो उसके विरह विह्वल हृदय में उन्माद प्रगट होगया उसके मन में सलीम बसता था और नेत्रों में भी वही दीखने लगा। अकबर में भी उसे सलीम के दर्शन हुये।

क्या सूझ नहीं पड़ता है, आँखों में चरबी छाई ?
उस लड़के के फन्दे में इतनी हो गई दिवानी।
क्या शर्म हया सब छूटी ? गिर गया आँख का पानी।
मत घबड़ा तेरी मस्ती अभी उतर जाती है।
देखें आँखों पर चढ़ कर कैसे तू बच जाती है ?
मैं प्राण दण्ड हूँ देता कल की उस गुस्ताखी पर ?

अनार कली सलीम को ही अपना प्रेम समर्पण कर चुकी थी। अकबर की घुड़कियाँ उसके निश्चय को कैसे परिवर्तित कर सकती थी। उसने धीरता और साहस से उत्तर दिया।

"तो कलम अभी कर दीजे हाजिर है मेरा यह सर"

अनार के निश्चय को सुन कर अकबर ठंडा होगया और अनार से बोला समय है, अब भी बच सकती हो तुम्हारे निर्णय पर ही सारी घटना निर्भर है। तू राजमुकुट की मणि क्यों नहीं बन जाती।

अनार इतनी कच्ची नहीं थी जो अकबर के प्रलोभन में फंस जाती। वह तो सलीम को वर चुकी थी। अकबर के लिये हृदय कहाँ से लाती उसे रानी बनने की इच्छा भी नहीं थी। वह क्रोधित होकर अकबर से बोली।

बस दूर दूर ही अकबर इस ओर न पैर बढ़ाना ।
निज कर से छू छू करके अपवित्र न मुझे बनाना ।।
कर झटक अनार कली ने पीछे हट डाँट बताई ।
हो क्रोधित थर थर काँपी गुस्से से आँख दिखाई ।।

अकबर सावधान होकर बोला कि मुझे क्या पता था कि तू इतनी विष भरी है । अब मैंने तुझे पूर्ण रूप से पहिचान लिया है । जब यौवन का नशा उतर जायेगा दर दर की ठोकरें खानी पडेंगी और जीवन भर दुःख के आँसू बहाने पडेंगे, अब भी समय है विचार करले । उसने उत्तर दिया यह कभी नहीं हो सकता।

मैं मरने को बैठी हूँ बलिदान प्रेम पर करदो ।
प्यासे पृथ्वी के मुख को शोणित से मेरे भरदो ।।

अकबर ने उत्तर दिया मैं तुझे इस प्रकार सुख की मौत थोड़े ही मरने दूंगा । और उसको दर दर की ठोकरें खाने के लिये निर्वासित कर दिया । निर्वासिता अनारकली बन मार्ग में भटकने लगी । कभी इस मार्ग पर विचरण करती और कभी दूसरे पर, कभी मार्ग में आई हुई नदियों को पार करती पर किसी भी समय सलीम को नहीं भूलती थी । लाहौर के वनों में वह घूम रही थी । एक समय वह सलीम के ध्यान में मग्न बैठी हुई थी कि सलीम ने आकर उसके नेत्रों को मींच लिया। वह चौंक उठी और अलग होने का प्रयत्न करती हुई भयभीत हो सोचने लगी यह कौन आगया । नेत्र घुमा कर जो पीछे देखा तो प्रियतम को खड़े पाया । नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ

और बार बार चकित हो कर देखने लगी। सलीम बोला इतनी जल्दी भूल गई क्या ? में सलीम हूँ तेरा दास, यह सुन कर अनारकली हर्ष से विह्वल हो गई और उसके नेत्र भर आये फिर सलीम के समझाने पर साहस करके बोली

"हुई आज पूरी पूजा जो दर्शन यह पाया अभिराम
अव जाओ तुम राज्य करो, मत बादशाह को रुष्ट करो" ।

सलीम ने उत्तर दिया "यह क्या कहती हो सलीम तो तुम्हारा ही हो चुका है। पिता का शासन दुनिया पर होगा। इस हृदय पर उनके राजदंड का कोई मंत्र न चल सकेगा। राज वैभव सुख के लिये और मेरा सुख साम्राज्य तुम्हीं तक है। तुम्हारे बिना जग सूना है। हमें कौन विलग कर सकता है। तुम चिन्ता मत करो।"

अनार की साधना पूरी हो चुकी थी। उसके हृदय में काम कब था। वह नियति के हाथ की पुतली नहीं बनना चाहती थी। विष पास था ही। निकाल कर शीघ्र ही मुख में डाल लिया और नेत्र बंद करती हुई बोली :–

जो जो मुझसे चूक हुई हो उसे क्षमा करना हे नाथ ।
मुझे भुला देना मत रोना, खूब निबाहा पकड़ा हाथ ।।

यह कहते कहते उसकी जीभ रुक गई। कुमार विष निकालता रह गया पर विष तो नीचे उतर चुका था। विवश होकर वह चिल्लाया। घोड़ा भी हिनहिनाने लगा। इस ध्वनि को सुन कर अन्य शिकारी भी वहां आगये––

"पहुंचे सलीम के पास वहां शव देख किसी का घबड़ाये;
देखा सलीम को रो रो कर सीने से शव को लिपटाये"

सलीम शव को फूलों से ढक कर लाहौर ले आया और वहां पर उसने प्रेयसी की सुन्दर समाधि बनवाई।

पश्चात् भी :-

आंसू से भीगे फूल वहां पर विलख चढ़ाया करता था।
घंटों चिपटा उसकी समाधि से रो रो आहें भरता था॥

शाही महलों में महरुन्निसा नाम की एक व्यापारी की कन्या रहती थी। वह रूपवती थी और उसके रूप विकास के साथ साथ सलीम का घाव भी भरता गया। एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते गये। यह आकर्षण और घनिष्टता मंत्री की कन्या जमीला को रुचिकर नहीं था। उसे यह देख कर ईर्ष्या होती थी। उसने जाकर बादशाह से शिकायत की और अकबर ने उचित करने के लिये उसे विश्वास दिलाया। अकबर को स्मरण हो आता है कि अली कुली जो अभी अभी सीमा प्रदेश से आया है, बड़ा ही वीर है और अभी तक अविवाहित भी; दोनों एक मेल के हैं। दोनों का विवाह हो जायेगा; मेहर, अली कुली के साथ दूर चली जायेगी। फिर कोई डर नहीं रहेगा और सलीम स्वयं ही सुधर जायेगा।

कुछ समय उपरान्त मेहर का विवाह शेर अफगन (अली कुली) के साथ हो गया। परन्तु सलीम को चैन नहीं था। एक दिन रात्रि को वह मेहर के शयनागार में घुस गया। वह अभी जग रही थी। किसी को छिपा हुआ देख कर उसने

झट तलवार निकाल ली और कड़क कर बोली सावधान ! तू कौन है ? क्यों आया है ? आगे बढ़ा कि तलवार के घाट उतार दूंगी । सलीम ने प्रगट हो कर कहा :–

"सलीम हूँ, मेहर ! मुझे मत रोको ।
'शेर' मार कर बनें अकण्टक, करो मदद मत रोको ।।"

मेहर ने उत्तर दिया–"तुम्हें यह कृत्य शोभा नहीं देता । दूसरे के घर जाना और ऐसा नीच विचार करना तुम्हारे लिये उचित प्रतीत नहीं होता । जाओ, तुम अभी यहां से निकल जाओ ।"

"पर नारी के घर में घुसना, पति का खून बहाने ।
फिर भी अपने को सलीम कह आया मुंह दिखलाने ।।"

इन शब्दों के सुनते ही सलीम चैतन्य हो गया और आश्चर्य चकित हो बोला :–

"मेहर मेहर तुम क्या कहती हो मैं होगया पराया ।
मेरी भावी सम्राज्ञी ने किसको है अपनाया ।।"

भय और घृणा की ज्वाला में जलने की शक्ति सलीम में नहीं थी इसलिये साधारण सी दृष्टि डालता हुआ शीघ्र ही निकल गया ।

सूबेदारी की प्रभुता पाकर शेर अफगन का मद बढ़-गया । वह स्वाभाव से रूखा तो था ही अब और भी नीरस हो गया । कोमलता वह जानता न था । उसके जीवन का लक्ष्य

मरना और मारना था । उसके सम्मुख मेहर बोल नहीं सकती थी । मेहर केवल अपने कर्तव्य का पालन करती थी । उसका स्वामी क्रूर भी था । वह अपने नारित्व पर पश्चाताप भी करती थी । इसी समय अकबर के मरजाने का समाचार मिला । वह अपमान और दुःख अधिक सहने के लिये प्रस्तुत नहीं । मेहर के पास सर्वसुन्दरी नाम की एक सहेली आया करती थी और समय समय पर उसे सांत्वना देती थी ।

शेर वीर था पर सुप्रबंधक नहीं । प्रजा उससे दुखी थी । अकाल पीड़ितों से कर वसूल करने के लिये उसने बड़ी कठोरता और निर्दयता से काम लिया । मेहर की अनुनय विनय करने पर भी उसनें सर्वसुन्दरी के पति धर्मात्मा विमलराय की हत्या करदी । इससे प्रजा और भो बिगड़ गई । मेहर का हृदय घायल होगया । शेर की शिकायतें बादशाह सलीम तक निरंतर पहुंच रही थीं। विमलराय की हत्या को आधार बना कर सलीम शेर अफगन को वहां से हटाना और मरवाना चाहता था । मेहर अभी तक उसके हृदय में स्थान बनाये हुये थी ।

एक दिन उसने अपने एक सैनिक गुप्तचर नाहरसिंह को बुला कर कहा कि शेर अफगन को मृत्यु के घाट उतार दो । इसके बदले में तुम जो मांगो मैं तुम्हें दूंगा । नाहरसिंह बीड़ा उठाकर चला गया । घर पहुंच कर सारा समाचार स्त्री से कहा । सलीम की नीचता पर स्त्री को बड़ा क्रोध आया और अपने पति से बोली ।

"तो क्या यों कायर से छिप कर हत्या को जाते हो ?
मिट्टी में क्षत्रिय कुल गौरव अपना मिलवाते हो ?"

स्त्री के वचन सुनकर नाहरसिंह लज्जित हुआ और उसने अपने विचार पलट दिये। बादशाह को तोड़े लौटा दिये और देश छोड़ कर चला गया।

अपने मार्ग का कांटा हटाने वाला कोई अन्य वीर की खोज में सलीम व्यस्त दिखाई देने लगा। अन्त में उसकी दृष्टि कुतुबुद्दीन पर पड़ी। जमीला के प्रेम को सलीम ठुकरा चुका था और उसका विवाह कुतुबुद्दीन से करवा दिया। कुतुब को प्रजा का असंतोष दबाने के लिये ढाका का हाकिम बना कर भेजा।

शेर कुतुबुद्दीन को सूबे का अधिकार नहीं सौंपता था। उसे बहुत समझाया पर वह विद्रोह करना चाहता था। उसे विश्वास था कि सैना उसका साथ देगी परन्तु स्वामिभक्त सैनिक बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन नहीं देखना चाहते थे। अन्त में शेर कुतुब को मुहर सौंप कर सपरिवार बर्दवान में जाकर ग्राम्य जीवन व्यतीत करने लगा। मेहर को भी इस जीवन में शान्ति और संतोष मिला।

सलीम ने कुतुब के द्वारा शेर अफगन के पास अपना संदेशा भेजा। उसे सुनते ही शेर क्रोधित हुआ और तलवारें खिच गईं। कुतुब सदा के लिये सोगया और रक्षकों ने शेर को सर्वदा

के लिये चिरनिद्रा में लीन कर दिया। मेहर को बादशाह के पास ले जाया गया। मेहर को विषम ज्वर चढ़ आया। अनेक उपचार किये गये और बादशाह ने अपने कोमल और मधुर व्यवहार से उसने उसके मन को मोहित कर लिया। वह बार बार उससे क्षमायाचना भी कर चुका था। मेहर के साथ अनेक केलियां करता हुआ प्रेममय जीवन व्यतीत करता रहा। और एक दिन प्रेम प्रस्ताव कर दिया। मेहर के नेत्रों में प्रेमजल भर आया। उसने अपना सिर झुका दिया और जहांगीर ने गद् गद् होकर अपना ताज उसके सिर पर रख दिया।

इस ऐतिहासिक घटना में कल्पना का पुट देकर शृंगार रस की निष्पत्ति की गई है। आकार की दृष्टि से यह महाकाव्य है। इसका नायक सलीम और नायिका मेहर है। इस में शृंगार रस का प्राधान्य है बीच बीच में करुणा और वीभत्स के भी छींटे मिलते हैं। छंद प्रसंगानुकूल बदलते चलते हैं। १८ सर्ग हैं; सरिता, मैदान, प्रातः-सायं, रात्रि के वर्णन हैं। प्रबंध का प्रभाव भी सफल है। मृत्यु चित्रों का समावेश होने से रस सौन्दर्य में बाधा उपस्थित होती है। यहां प्रेम का रूप दृढ़ और व्यवस्थित नहीं है। कहीं वह आदर्श और कहीं वासना प्राधान्य है। नायक को काम फल की प्राप्ति होती है।

प्रबंध की दृष्टि से अनार कली का प्रसंग जुड़ा सा प्रतीत होता है। यह प्रसंग कितना सुन्दर और मार्मिक है। इतिहास

से चाहे इसका संबंध न हो किन्तु हिन्दू नारी की प्रेम परा-काष्ठा का अद्भुत प्रदर्शन है। यह वर्णन सजीव कलात्मक और तत्कालीन मुगल सम्राटों की मनोवृति का द्योतक है। अनार-कली जिसमें :—

"शिशुता की निशा सिरानी उग आया यौवन दिनकर"

एक साधारण नर्तकी ही है। उसकी नर्तन कला पर सलीम मोहित हो उठा है और आलिंगन करने पर अकबर बाधा डालता, और स्वयं प्रेम की भीख मांगता है। अनार उसकी प्रेम भिक्षा को ठुकरा देती है। मृत्यु भय दिखलाने पर भी वह सलीम के प्रति सोचती है :—

"कर थाम लिया अबला का तो पूरा उसे निभाना"
"तुम भूल मुझे यों जाना ज्यों बालक स्वप्न सवेरे।
पर भुला न मैं पाऊँगी तुमको हे प्रियतम मेरे॥"

विवशता ही नारी का भूषण है यही उसको उत्तरा-धिकार में मिला है और वह कह उठती है।

"नारी हूँ लज्जा ही के परदे में बंधी हूँ।"

इस प्रसंग का अधिकारी वस्तु से कोई संबंध नहीं है फिर भी काव्यकार ने इसे अलग स्थान नहीं दिया क्योंकि इसका उद्देश्य हिन्दू नारी के ओज, परमपरा प्रवृति प्रदर्शन से जिसके बल पर हिन्दू संस्कृति सदियों के प्रहारों से जीवित रह सकी तथा मुगल सम्राटों की विलास प्रियता का दिग्दर्शन करना है।

इस प्रसंग का कदाचित् यह भी उद्देश्य प्रतीत होता है कि अकबर महान् किस कोटि का था और जहाँगीर किस कोटि का। इतिहास और सत्य घटना के आधार पर जहाँगीर के चरित्र की रक्षा करना ही इस प्रसंग की संबद्धता प्रतीत होती है। इस प्रसंग के केवल दो ही पात्र हैं। अनार और अकबर। अनार हिन्दू विराट नारी की प्रतीक है और अकबर विलासिता का। वह सलीम से प्रेम और अकबर से घृणा करती थी। वह अकबर से कह उठती है :–

"तू फिर भी समझ न पाया है हृदय अभी नारी का
उस पर न विजय पा सकता छल बल अत्याचारी का
इस कोमल तन के भीतर है हृदय कोट का मण्डल
जिसमें न कभी घुस पाये हैं विश्व लुटेरों के दल"

इस फटकार में कितना जीवन सत्य सन्निहित है।

वह कहती है :—

'चिडियों सी पिंजड़े में हैं, है रोम रोम से रोतीं
छिप छिप कर अश्रु गिरा कर दाने विनाश के बोतीं।"

यह अकबर के जीवन की वह झांकी है जहाँ वह सम्राट नहीं मानव था; महान नहीं नीच था। इसके प्रतिकूल जहांगीर महानता और मानवता लिये हुये था। अन्त में जब अनार की भिक्षा सफल नहीं होती वह विनय पूर्वक कहती है।

"तू ईर्षा क्यों करता है ! है सारी दुनिया तेरी।
मत छीनों; रहने दो, तुम छोटी सी दुनिया मेरी।"

तब अकबर कह उठता है:–

"मैं अपना मन वहला लूंगा, अच्छा कर लूंगा यह रोगी"
और अन्त में नारी हृदय की विजय को स्वीकार कर लेता है।
"जा सुन्दर थी, पर हृदय हीन ! मैं जीत नहीं तुझको पाया।"

इस प्रकार 'भक्त' जी ने प्रेम की उज्वलता भव्यता और सुन्दरता का सजीव चित्र अंकित किया है। इस के अतिरिक्त सारी प्रबंध कल्पना प्रौढ़ दिखाई पड़ती है। प्रसाद गुण वाहुल्य के कारण भाव ग्रहण सुलभ हो गया हैं। प्रत्येक सर्ग अपनी निजी नवीनता लिये हुये हैं।

वर्णन में दृश्य चित्रण अत्यन्त सजीव हुआ है। पात्र चित्रण और प्रकृति चित्रण दोनों ही से कवि के सूक्ष्म निरीक्षण, दृश्य चित्रण शक्ति का पता लगता है। प्रकृति वर्णनों में रेतीले मैदानों के सूनेपन, काफिलों का मार्ग, नदी के किनारे पर के घास के मैदान आदि के स्पष्ट चित्र चित्रित किये हैं। आपने प्रकृति का प्रयोग एक अन्य प्रकार से भी किया है प्रकृति मानव की सहचरी है। मेहर का लालन पालन प्रकृति के संपर्क में होता है।

मृदु कलियां चुटकी बजा बजा कर बच्चे को बहलाती हैं
कोमल प्रभात किरणें हिम कण में नहा नहा कर नहलाती हैं
यह भावी के रहस्यमय अभिनय की पहली ही झांकी है
यह सुभग चित्र किसने खींचा ? क्या मूर्ति गढ़ी यह बांकी है ?

अनार कली, मेहर और जमीला तथा सलीम सभी की क्रीड़ास्थली प्रकृति ही है। यदि मेहर दुलहिन है तो बसन्त में प्रकृति भी बधू बनी बैठी है।

ग्राम्य जीवन और कृषकों की करुण कथा का वर्णन और उनके साथ नूरजहाँ की कोमल वृत्तियों का समन्वय कवि ने बड़े कौशल से किया है। नूरजहां और सर्वसुन्दरी के मेल से कवि ने भारतीय और मुस्लिम संस्कृति का सामन्जस्य प्रदर्शित किया है।

विरह और अभिलाषा के भावों को मूर्त्त रूप देकर कवि ने व्यंजित किया है।

"विरह सिन्धु के मन्द सलिल में प्रिय अभिलाषा का जलयान।
जीवन में निर्जीव पड़ा है, तूने फूंका तनिक प्रान ।।

आपके संवादों में सजीवता कट कूट कर भरी है।

भाषा खिचड़ी है। संस्कृत शब्दों के साथ साथ फारसी शब्दों की कमी नहीं। फारसी के शब्दों के प्रयोग से काव्य में सजीवता लाई गई है पर काव्य दुरुह नहीं हो पाया है। मुहावरों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। भाषा प्रसाद गुण पूर्ण है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त का स्वाभाविक ढंग से प्रयोग किया है। छंदों में २८ और ३१ मात्रा वाले छंदो का ही प्रयोग किया है।

संक्षेप में प्रेम विरह कर्त्तव्य के मनोहर एवं सरस चित्र, संवादों की सजीवता तथा उनकी मनोवैज्ञानिकता, प्रकृति वर्णन तथा शैली के माधुर्य के कारण आपका काव्य अधिक सम्मान को प्राप्त हुआ है। मेहर का उल्लेख चाहे इतिहास में मिल जाये पर उसका हृदय स्पंदन 'नूरजहाँ' में ही प्राप्त होगा।

झाँसी की रानीं—

हिन्दी संसार की प्रथम राष्ट्रीय कवियित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान थीं। आधुनिक कविता के विकास में आपका एक विशिष्ट स्थान है। महादेवी के बाद आप ही का नाम लिया जाता है। आपसे अनेकों को काव्य प्रेरणा मिली है।

आपकी कविता पुस्तक में वीर, वात्सल्य और शृंगार रसों की प्रधानता है। आपकी देश-भक्ति पूर्ण कविता में ओज है और उद्‌बोधन की सामग्री है।

'झांसी की रानी' आपकी अमर कला कृति है। इस कविता द्वारा उनकी जितनी ख्याति हुई उतनी अन्य किसी की भी नहीं हुई। झांसी की रानी हिन्दी के प्राण हैं। इस वीर गीत में अमरता के बीज छिपे हुए हैं। इसकी प्रत्येक पंक्ति में नवीन संदेश, नवीन स्फूर्ति और नवीन रस ओत-प्रोत हैं। वीर रस छलका पड़ता है। वीरोचित नारी जीवन का जैसा सुन्दर चित्र इस कविता में उतारा गया वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। झांसी की रानी में भारतीय विद्रोह के मर्म को पहिचाना गया है—

सिंहासन हिल उठे राजावंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहिचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।

'झाँसी की रानी' कविता के १८ पदों में एक एक अध्याय की सी शक्ति है। बुन्देले हर बोलों से सुनी इस गाथा को

"खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी"

लेखिका ने अमरता प्रदान कर दी। भारतीय विप्लव की उल्का झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई का कर्तव्य सजीव रेखाओं में अंकित हुआ है। इस अप्रतिम और अनन्य वीर गीत के उपरान्त आपने 'वीरों का कैसा बसन्त'; 'जलियां वाले बाग का बसन्त' लोक प्रिय रचनायें लिखीं। वीर भाव के साथ साथ भावुकता भी है।

कहदे अतीत अब मौन त्याग,
लंके! तुझ में क्यों लगी आग,
ऐं कुरुक्षेत्र! अब जाग जाग
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो बसन्त!

आपने शृंगार रस की कवितायें भी लिखी हैं जिनमें हृदय की सरलता और स्वाभाविकता भरी हुई है। चलते समय के भाव देखिये :—

तुम मुझे पूछते हो जाऊँ?
मैं क्या जबाब दूँ तुम्हीं कहो?
जा, कहते रुकती है जबान,
किस मुख से तुमसे कहूँ रहो॥

आपकी कविता में नारीत्व की आभा दर्शनीय है आत्म-समर्पण की भावना कैसी मुखरित हुई है :—

पूजा और पुजापा प्रभुवर,
इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर,
इसी भिखारिन को समझो।

सूर और तुलसी के बाद वात्सल्य की रचना आपही ने की है। आपकी यह भावानुभूति आत्मार्जित है। अपनी बालिका का परिचय देती हुई वह अपना हृदय उंडेल देती हैं। उनका मातृ हृदय बोल उठता है।

मैं बचपन को बुला रही थी ,बोल उठी बिटिया मेरी
नन्दन वन सी फूल उठी, यह छोटी सी कुटिया मेरी

इन पंक्तियों का माधुर्य तो वही अनुभव कर सकता है जिसने मातृ हृदय पाया हो:—

मेरा मन्दिर मेरी मसजिद, काबा काशी यह मेरी।
पूजा पाठ ध्यान जप तप है घट घट वासी यह मेरी।।
परिचय पूछ रहे हो मुझ से कैसे परिचय दूँ इसका।
वही जान सकता है इसको माता का दिल है जिसका।।

यह मातृ हृदय का नवनीत है। 'इसका रोना' भी मातृ हृदय की भावुकता से परिपूर्ण है। यह भी स्पृहणीय बन गया है:—

तुम कहते हो मुझको इसका रोना नहीं सुहाता है,
मैं कहती हूँ इस रोने से अनुपम सुख छा जाता है।

'मेरा नया बचपन' तो वात्सल्य का मानवी करण ही है। अपनी संतान में माता अपना प्रतिबिम्ब ही नहीं पर आत्मा की प्रतिकृति पाती है।

जिसे खोजती थी बरसों से अब जाकर उसको पाया ।
भाग गया था मुझे छोड़ कर वह बचपन फिर से आया ॥

बच्चों का रोना सुनकर माता का हृदय अभिमान से भर जाता है ।

तुमको सुन कर चिढ आती है ,मुझको होता हैं अभिमान ।
जैसे भक्तों की पुकार सुन गर्वित होते हैं भगवान ॥

आपकी कविता के भाव सीधे और सरल हैं । उन्हें सुन कर लोग आत्म विभोर हो जाते हैं । कविता में मादकता, आकर्षण और हृदय की नाना परिस्थितियों की अनुपम झांकी है । उसमें जीवन की अनुभूति सरसता और गति है । जीवन और साहित्य का पूर्ण सामंजस्य है ।

आपकी भाषा खड़ी बोली है । संस्कृत के तत्सम शब्दों का सफल प्रयोग है । भाषा भावों के अनुकूल है । भाषा प्रसाद गुण युक्त है और ओज तथा माधुर्य भी है । अलंकारों का पूर्ण अभाव सा है । छन्दों का चयन बड़ा व्यवहारिक है । आपकी शैली सरल और सुबोध है ।

आर्यवर्त्त

श्री मोहनलाल मेहतो का यह अनोखा महाकाव्य है । इसके कथानक की आधारशिला 'पृथ्वीराज रासो' है ।

अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी से पराजित होकर बंदी कर लिये गये हैं और भारत के स्वाधीनता सूर्य को

अपने भीतर छिपा लेने वाली पहली संध्या थी। युद्ध ज्वाला से बचे हुये दो वीर चन्द और समरसी देवी मंडप में बैठे हुये हैं दोनो ही थके हुये और आहत हैं। चन्द पृथ्वीराज को खोजने के लिये युद्ध भूमि में जाता है।

गौरी के दरबार में जयचन्द पहुंचता है और इसी समय बन्दी पृथ्वीराज उपस्थित किये जाते हैं। जयचन्द को देखते ही पृथ्वीराज क्रोधित हो उसे धिक्कारते हैं और गौरी उनकी आंखें फोड़ देने की आज्ञा देता है। यह सुनते ही पृथ्वीराज लोह बेड़ियों को तोड़कर युद्ध करने लगते हैं। उनके साहस को देखकर सभी निस्तब्ध रह जाते हैं और फिर बंधन में लेकर उनके नेत्र फोड़ दिये जाते हैं और साथ ही भारत का भाग्य भी फूट जाता है।

चन्द नरेन्द्र की खोज में असफल होता है और व्याकुल तथा निराश हो देवी के मन्दिर पर लौट आता है। यहाँ समरसी के शव को देखकर उसे और भी दुःख होता है। समरसी के शव का समर क्षेत्र में लेजाकर चिता की अग्नि को सौंप देता है।

जयचन्द मजलिस में आता है और भयानक स्वप्न का वर्णन करता है सारी सभा करुणा के सागर में डूब जाती है। आत्महारा जयचन्द उपवन में रात भर घूमता रहता है। स्वप्न में वह पृथ्वीराज की रौद्र मूर्त्ति देखकर चीख उठता

है। और एकान्त में अपने नीच कर्त्तव्य का विश्लेषण करता हुआ कहता है :—

"धोऊँगा कलंक रक्त देकर शरीर का।"

उत्साह से पूर्ण हस्तिनापुरी पृथ्वीराज के स्वागत की प्रतीक्षा कर रही है। इसी अवसर पर कवि चन्द निराश और मलिन अवस्था में अपने घर आता और स्त्री को युद्ध का शोक समाचार सुनाकर ठगा सा रह जाता है। चन्द अपने पुत्र जल्ह को महाकाव्य का शेषांश पूर्ण करने की कह कर नरेंद्र की खोज में निकला। कविरानी महारानी को समाचार सुनाने के लिये चली।

कवि प्रलय के लिये प्रार्थना करता है और महारानी मंगलकामना के लिये महामाया की आराधना में लीन है। महारानी ने शोक समाचार सुन कर भी धैर्य नहीं त्यागा और स्वयं शत्रुओं से लोहा लेने के लिये प्रस्तुत हुई और चन्द से अपनी वाणी द्वारा ज्वाला भड़काने के लिये कहा। दिल्ली की आर्य सेना हाहाकार मचाने लगी और सब स्वतंत्रता की चिन्ता में लीन होगये।

महारानी युद्ध मंत्रणा में लीन है।

सब में स्फूर्ति और उत्साह है। शत्रु नाश के लिये सब ने तलवारें खींच कर शपथ ली। चन्द ने महारानी का पत्र ले जाकर जयचन्द को सुनाया। जयचन्द नें पृथ्वीराज के जीते रहने और आंखें फोड़ी जाने का समाचार सुनाया। जयचन्द ने देश की

श्रृंखलाओं को काट देने की प्रतिज्ञा की। कवि चन्द जब दिल्ली पहुंचा तो उसे उसने सैनिक शिविर के रुप में परिणित पाया। महारानी की प्रार्थना से देश देश के राजा आर्यध्वज की छाया में एकत्रित थे।

गौरी का एक गुप्तचर दिल्ली की युद्ध तैयारी का समाचार ले जाकर गौरी को सुनाता है। इस संवाद को सुन कर गौरी सन्न रह गया और महारानी की संगठन शक्ति की प्रशंसा की। पृथ्वीराज को गजनी भेज दिया गया।

महारानी की सेना युद्ध के लिये आगे बढ़ी। गौरी भी अपने वीर सैनिकों को उत्साहित करता हुआ युद्ध के लिये प्रस्तुत हुआ। भयंकर युद्ध हुआ। जयचन्द युद्ध करता हुआ मारा गया। आर्य सेना ने गौरी की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया और आर्यों की जय जय कार से आकाश गूंजने लगा।

महारानी का शिविर आलोकित है। जयचन्द की ग्लानि और कातर वाणी से सब दुखी हैं और आर्य भूमि से क्षमा मांगता हुआ मृत्यु प्राप्त करता है। नरेन्द्र को बन्दी जान कर सब दुखी होते हैं। चन्द अम्बिका के ध्यान में बैठा है और नरेन्द्र की खोज के लिये साधन प्राप्त करता है। वह फकीर वेश में गजनी जाता है।

नरेन्द्र की प्रतीक्षा में दिन, मास, ऋतु और वर्ष बीतते गये और उधर गौरी के नगर में फकीर वेश चन्द का प्रकाश

फैलने लगा । मंत्री ने फकीर की प्रशंसा गौरी से की और गौरी फकीर के चरणों में लोटता दिखलाई पड़ा । शाह के हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही थी । सुलतान फकीर के मुख पर हर्ष और क्रोध की रेखायें देख रहा था फकीर ने गौरी की अभिलाषा व्यक्त करदी और नरेन्द्र की भाग्य गणना के लिये आज्ञा प्राप्त करली जिससे गौरी की विजय यात्रा हो ।

शाह फकीर बना हुआ कवि चन्द कारागार में पृथ्वीराज से मिल कर अपना परिचय देता और युद्ध का सारा हाल सुनाता है । पृथ्वीराज से मंत्रणा करके कवि चन्द गौरी के मंत्री के पास गया और एक ही वाण से सात तवे तोड़ डालने की विद्या पृथ्वीराज से सीखने के लिये कहा । गौरी सहमत होता है । तवा तोड़ने के साथ अनेक प्रकार के समाचार फैलते हैं। पृथ्वीराज को देख कर सभी आश्चर्य चकित हैं । शाह जी भी आये ।

मानव समूह के बीच उच्च मंडप पर गौरी बैठा हुआ था। गौरी ने आज्ञा दी कि पृथ्वीराज बन्धन मुक्त अवस्था में लाया जाये । सभा के बीच पृथ्वीराज आगये । पृथ्वीराज के हाथ में जयचन्द का उपहार में दिया कठोर धनुष दे दिया गया । पृथ्वीराज ने धनुष की डोरी चढ़ाई और एक ही वाण से सातों तवों को गिरा दिया । साथ ही सुलतान के मुख से वाह वाह की ध्वनि निकली और इन शब्दों के सुनते ही पृथ्वीराज ने अपने दूसरे वाण से उसे धराशाही कर दिया । चारों ओर हाहाकार मच गया और इधर शाह ने दो तलवारें निकाली

और दोनों आपस में कट मरे। महारानी और कविरानी दोनों नें अपने पतियों को पृथ्वी की गोद में देखा और जल्ह नें इसी समय महाकाव्य की अंतिम पंक्ति लिखी।

नाना प्रसंगों को लेकर कल्पना के बल पर कवि ने ऐसे रंग उरेहे और ऐसे ऐसे हाव भावों का वर्णन किया जिसे पढ़ कर मन मोहित हो जाता है। जो काम पृथ्वीराज नहीं कर सके वह संयोगिता ने कर दिखाया।

'आर्यावर्त' अभिनाक्षर छन्द का मौलिक महाकाव्य है। पुनरुक्ति से यह छंद निर्मल आनन्द प्रदान करता है और अनायास ही अर्थ की पूर्णता प्राप्त हो जाती है।

महाकाव्य के जितने भी लक्षण बतलाये हैं अधिकांश में उनका समन्वय इस महाकाव्य में हो जाता है। कथानक ऐतिहासिक है, पात्र राजकुल के हैं, वीर रस प्रधान है, संध्या नगर आदि का वर्णन है। आठ के स्थान पर १३ सर्ग हैं। एक सर्ग में एक ही छन्द है और अन्त में छन्द बदलता और आगामी सर्ग की कथा की सूचना मिलती है। आदि में मङ्गलाचरण है। महाकाव्य के लिये देश, काल, चरित्र का विस्तार और काव्य संपत्ति आवश्यक है और यह सभी अवयव प्रचुर-मात्रा में इस महाकाव्य में मिलते हैं। काव्य संपत्ति के कारण ही मेघदूत, प्रिय प्रवास और साकेत महाकाव्य की कोटि में आ सके हैं।

लक्षण ग्रंथों का निर्माण महाकाव्यों के निर्माण के

उपरान्त ही होता है। संस्कृत ग्रंथों के आधार पर बनाये हुये महाकाव्यों के लक्षणों से सजीव हिन्दी भाषा के महाकाव्यों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। वह समय दूर नहीं है जब आज निर्मित महाकाव्यों को ध्यान में रखकर ही लक्षण ग्रंथों का निर्माण होगा। उस समय आर्यावर्त जैसे महाकाव्यों को महाकाव्य की कोटि मं रखना विवादग्रस्त प्रश्न नहीं होगा। इस दृष्टि से आर्यावर्त प्रगतिशील सजीव महाकाव्य है।

प्रत्येक महाकाव्य का एक संदेश होता है। आर्यावर्त का भी एक संदेश है। मानव को कर्तव्य परायणता का संदेश देता है और सत्य का प्रकाश ही मानव को कर्मवीर बना देता है। कर्तव्य ज्ञान ने ही जयचन्द जैसे आत्म हन्ता को यह भाव प्रदान किया।

अपने लहू से धो दूंगा कलंक आर्य भूमि का।

दूसरा पाठ राष्ट्रीयता का है।

"राष्ट्रीयता ही श्रेष्ठ आर्य धर्म है"

भारतीय इतिहास में जयचन्द घृणित दृष्टि से देखा जाता है। दशद्रोही के अर्थ में जयचन्द रूढ सा होगया है परन्तु लेखक ने जयचन्द के ऐसे मार्मिक चित्र उपस्थित किये हैं कि उसके प्रति पाठक की सहानुभूति स्वयं उत्पन्न हो जाती है। विश्वास-घाती जयचन्द के हृदय का कवि ने सजीव विश्लेषण किया ह कि उससे उसकी कलंक कालिमा धुल जाती है और वह श्रद्धा का पात्र बन जाता है। अन्तिम समय का विलाप

तो बड़ा ही कारुणिक है उसकी हार्दिक वेदना प्रगट होजाती हैं और कवि ने उसे निष्कलंक कर डाला है। महाकाव्य का चरित्र चित्रण एक आवश्यक तत्व है। कवि ने गौरी, चन्द, जयचन्द, पृथ्वीराज और महारानी संयोगिता का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया हैं।

मानव प्रकृति के साथ साथ कवि ने प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण किया है। प्रकृति में मानव मन को आकर्षित करने की अपरिमित शक्ति है। उषा संध्या, रंग विरंगे बादल, मुस्काती कलियां हरे भरे पेड़ पौधे किसके मन को मोहित नहीं करते। यदि कविता के साथ इनका संयोग होकर मानवीयकरण होजाये तो स्वर्ण में सुगन्ध समझिये। हिन्दी कविता में प्रकृति का सुन्दर चित्रण होने लगा है। प्रकृति और मानव का गठबंधन सा होगया है और प्रकृति मानव भावनाओं की अनुगामिनी होगई है। आर्यावर्त इस प्रकार के वर्णनों से रिक्त नहीं है।

रात शेष होगई, उमंग भरे मन में
आई ऊषा नाचती लुटाती कोष सोने का,
चांदी रम्य चन्द्रमा लुटाता चला हँसता
और निशा रानी मोद पूरिता मनोहरा
सीपज लुटाती चली अंजली में भरके।

रात्रि आगमन :—

आयी मोद पूरिता, सोहागवती रजनी
चांदनी का आंचल संभालती सकुचाती
गोद में खेलाती चन्द्र चन्द्रमुख चूमती।

सूर्योदय का वर्णन :—

अंधकार गज भाग गहन विपिन में,
दिन पति प्रकटा सरोष मृगराज सा
केसर सी किरणें विकीर्ण हुई नभ में ।

कवि ने परिवर्तनशील षट्ऋतु का भी सुन्दर वर्णन किया है। वेगवान ऋतु चक्र के समान कवि का वेगवान वर्णन है।

मधु ऋतु शेष हुई आया ग्रीष्म दैत्य सा
आये जलधर नभ सिंधु में जहाज से
शेष हुई वर्षा भी शरद आया हंसता
आयी अन्नपूर्णा लुटती स्वर्ण खेतों में
फिर हेमन्त आया-व्यग्र हुई बसुधा
पीले पड़े पत्ते आया शिशिर सिहरता
इस भांति ऋतु चक्र घूमता है वेग से ।

यहां कवि ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि समय बीतते देर नहीं लगती जीवन भी इसी प्रकार तीव्र गति से भागा जाता है।

कवि ने अवसरानुकूल प्रकृति वर्णन किया है। रात्रि का वर्णन जितने स्थानों पर किया प्रत्येक स्थान पर नया रंग और नयी कल्पनाओं की उड़ान हैं ।

आर्यावर्त में हास्य को छोड़ कर सभी रसों का परिपाक हुआ है। प्रधानता वीर रस ही की है और वीर रस के साथ रौद्र और भयानक रस मूर्त्तिमान होगये हैं और वीभत्स का दृश्य युद्ध भूमि में है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यावर्त अलंकारों का तो कोष है । सभी अलंकार स्वाभाविक रुप से प्रयुक्त हुये हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा मीलित उन्भीलित रूपक अलंकारों का दर्शनीय प्रयोग है पर वाहुल्य उत्प्रेक्षा का ही है। मानवीकरण अलंकार भी दर्शनीय है।

आर्यावर्त की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। उसमें चित्रमयता और अर्थ व्यंजकता लबालब भरी हुई है। भाषा में प्रसाद, माधुर्य और ओज सभी गुणों का समावेश है। स्थान स्थान पर अव्यवहृत शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो काव्य के माधुर्य की वृद्धि करते हैं।

आर्यावर्त में राष्ट्रीयता, हिन्दू—मुस्लिम सद्भावना का जीता जागता चित्र है । यहाँ घृणा देखने को भी नहीं मिलती। गौरी और गजनी के लोग पृथवीराज की प्रशंसा करते हुये थकते नहीं। इस दृष्टि से आर्यावर्त आदर्श महाकाव्य है।

हल्दी घाटी——

'हल्दी घाटी', 'जौहर', 'आरती और गोरा बध' के रचयिता श्री श्यामनारायण पाण्डेय आधुनिक हिन्दी वीर काव्य के भूषण हैं। आप युग कवि, राष्ट्र कवि और वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आपकी ओज पूर्ण रचनाओं में हिन्दी काव्य जगत में क्रान्ति सी मचा दी है। 'हल्दी घाटी' और 'जौहर' पर लेखक को देव-पुरस्कार और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्मानित किये जा चुके हैं।

हिन्दू नरेशों की स्वतंत्रता के साथ साथ मातृभूमि की

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

स्वतंत्रता की रक्षा के लिये महाराणा प्रताप ने अन्तिम प्रयास किया और सलीम तथा हिन्दू कलंक राजा मानसिंह की सेना से लोहा लिया था। राजस्थान के योद्धाओं नें इस समय अपनी तलवार के वारों से वैरियों के हृदयों को दहला दिया था। महाराणा की हार हुई फिर भी अपनी नैतिक विजय के कारण आज भी वे हिन्दुओं के प्रोत्साहन की वस्तु बने हुये हैं। महाराणा प्रताप का नाम आज भी हमारी नीरस नाड़ियों में लहू का संचार कर देता है।

कितने ही राजा मुगलों के आधीन हो चके थे। मेवाड़ गौरव महाराणा प्रताप ही ऐसे थे जो हिन्दुओं का मस्तक ऊँचा किये हुये थे। महाराणा के घर भी विद्रोह की अग्नि सुलग रही थी। शक्ति सिंह मुग़लों की आराधना में लीन था।

महाराणा उदय सिंह ने मेवाड का उत्तराधिकारी जगमल को बनाया। जगमल कायर और विलासी था। एक दिन सरदारों ने सहसा उससे राजमुकुट और तलवार छीन कर जय घोषणा और हर्षपूर्ण वातावरण के बीच महाराणा को राजकिरीट पहना दिया। इस समय से मेवाड गौरव की रक्षा का भार अपने शिर पर ले लिया। इस घटना से मेवाड प्रफुल्लित होगया और सरदारों की वीरता हिलोरें लेने लगी। राज्यारोहण के साथ साथ महाराणा ने प्रतिज्ञा की—"जब तक मेरी रगों में रक्त है धर्म को तिलान्जलि नहीं दे सकता वैभव के लोभ से कुल कलंकित नहीं कर सकता, माँ का पवित्र दूध नहो लजा सकता, भगवान एक-लिंग को छोड़ कर किसी के आगे मस्तक नहीं झुका सकता।

कोई साथ दे या न दे मैं युद्ध करूँगा-प्राण रहते वंश के हाथ से स्वाधीनता नहीं जाने दूंगा" राणा की प्रतिज्ञा के साथ साथ सरदारों ने भी सहयोग देने का प्रण किया ।

महाराणा की इस प्रतिज्ञा को अकबर ने भी सुना । वह भयभीत हुआ और दिल्ली का सिंहासन हिल उठा । सभी राजाओं को अपनी कूटनीतिज्ञता से अकबर ने अपनी ओर कर लिया था उसका भारत में केवल एक ही वैरी था और वह महाराणा प्रताप था । उसकी प्रबल इच्छा थी कि महाराणा का उन्नत मस्तक झुका दूँ । वह मेवाड़ पर आक्रमण करने का अवसर खोजने लगा । शीघ ही अवसर प्राप्त हो गया ।

एक बार महाराणा को प्रभावित करने के लिये मानसिंह मेवाड़ आया । महाराणा ने उसके साथ भोजन करना अस्वीकार कर दिया । यह मानसिंह का अपमान था । मानसिंह ने अकबर को भड़काया । अकबर ने शीघ्र ही मानसिंह को एक विशाल सेना देकर मेवाड़ का सर्वनाश करने के लिये भेज दिया । मान ने खमनौर से थोड़ी दूर डेरा डाल दिया । महाराणा भी समय चूकने वाला नहीं था । वह भी एक घाटी में २२००० सैनिक लिये पहले ही से आ डटा और शत्रु की प्रतीक्षा करने लगा । अरावली की उन्नति चोटी पर केसरिया फहराने लगा । प्रताप की सेना में हिन्दू मुसलमान दोनों थे । दोनों जाति के लोग युद्ध-यज्ञ में प्राणों की आहुति देकर जन्म-भूमि की रक्षा करना चाहते थे ।

एक दिन मानसिंह को भीलों ने बन्दी कर लिया। उसी समय जन समूह देखकर महाराणा भी पहुँच गये। देखा कि मान बंधन में है और लज्जा तथा दुःख से उसके नेत्र झुके हुये हैं। प्रताप ने शीघ्र ही बंधन खोल दिये और भीलों से कहा "यह कायरता है, युद्ध नहीं; धोखा है विजय नहीं, लघुता है गौरव नहीं, तुम्हारी वीरता की परीक्षा तो युद्ध-भूमि में होगी। तुम मान से क्षमायाचना करो और प्रेम सहित बिदा दो।"

श्रावण मास में युद्ध प्रारम्भ हुआ। मान हाथी पर और प्रताप चेतक पर आसीन थे। घोर युद्ध हुआ। शत्रु सेना के अनेक वीर काम आये। मुगल सेना का धैर्य टूट गया। स्थिर रहते पर भी स्थिर न रह सके। मेवाड़ के वीर अपने वीर सेनानी की अध्यक्षता में मुगलो को बनास नदी तक भगाते चले गये। मेवाड़ सैना के मैदान में आते ही मानसिंह के सतत प्रयत्न से मुगल लौट पड़े और घोर युद्ध होने लगा। इस बार और भी भयँकर युद्ध हो रहा था। शव पर शव गिर रहे थे खून की नदियाँ बह रहीं थीं। महाराणा मानसिंह को खोज रहे थे। सहसा उन्होंने उस रणमत्त हाथी को देखा जिस पर बैठ वीर सैनिकों से घिरा हुआ मानसिंह अपनी सेना का सन्चालन कर रहा था। चेतक तीव्रगति से हाथी के पास जा पहुंचा और अपने अगले पैर हाथी के मस्तक पर जमा दिये। राणा के प्रहार से महावत गिर पड़ा। महावत विहीन हाथी भाग गया और मेवाड़ के दुर्भाग्य से मान बच गया। उसी समय राणा पर मुगल टूट पड़े। मेवाड़ के सौभाग्य से उसी समय

झाला मान्ना आगया। उसने राणा के शिर से छत्र और हाथ से झंडा छीन लिया। शत्रुओं ने झाला मान्ना को ही राणा समझा और वह युद्ध में काम आया और महाराणा बच कर निकल गये।

जिस समय घोर युद्ध होरहा था, शक्ति सिंह पर्वत शिखर पर बैठकर तड़पते हुये बन्धुओं को देख रहा था, उसकी आँखों के सामने मेवाड़ गौरव की रक्षा के लिये सुपूत राजपूत आत्म विसर्जन कर रहे थे। आया तो था युद्ध करने पर उसके विचार परिवर्तित होगये। जन्म भूमि की दुर्दशा देख कर उसके नेत्रों में जल भर आया उसने राणा को भागते देखा। झालामान्ना को मरते देखा। उसका हृदय व्याकुल हो उठा। वह उठा और चेतक के पीछे चल दिया। वह राणा से क्षमा मांग कर प्रायश्चित करना चाहता था। उसने देखा कि दो शत्रु चेतक के पीछे लगे हुये जा रहे हैं। उसने तलवार निकाल कर दोनों को वहीं समाप्त कर दिया और राणा को पुकार कर कहा "ए नीला घोड़ा रा असवार" राणा ने मुड़ कर देखा और उसे पहचान लिया; राणा ने कहा "इतने राजपूतों के लहू से तेरी प्यास नहीं बुझी तो आ अपनी तलवार के पानी से तेरी प्यास बुझाये देता हूँ।" वह दौड़कर राणा के चरणों में गिर पड़ा और फूट फूट कर रोने लगा, राणा के नेत्रों में जल भर आया और हल्दी घाटी के बलिदानों के बदले में बन्धु-स्नेह मिला। राणा के मुख पर संतोष खेल रहा था उसी समय दोनों की दृष्टि चेतक पर गई। वह व्याकुल और छटपटा रहा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। राणा ने लाखों प्रयत्न किये चेतक को बचाने के लिये पर चेतक न बच सका। चेतक की मृत्यु से राणा को गहरा घाव लगा। वे शीघ्र ही संभल गये और शक्ति सिंह के दिये हुये घोड़े पर बैठ कर कमलनेर की ओर चले गये।

राणा को अब दिन में सुख और रात को नींद नहीं थी। अब वे जावरमाला की गुफाओं में दिन व्यतीत करने लगे। पास ही भीलों की बस्ती थी राणा और उनके बच्चों की रक्षा के लिये उन्होंने अपने प्राणों का ममत्व छोड़ दिया था। वे खोज खोज कर शत्रुओं को मार कर पहाड़ों में छिप जाते थे।

राणा के प्राण और स्वाधीनता एकाकार होगए थे। उन्हें भोजन भी कठिनाई से मिलता था। राजकुमार मुट्ठी भर मटर के लिये तरसते थे। जिनके शरीर में मखमल की शैया तक चुभती थी वे कांटों पर दौड़ते थे यह सब इसलिये कि मेवाड़ का मस्तक ऊँचा रहे।

चांदनी फैली हुइ थी। महाराणा गुहाद्वार पर बैठे मेवाड़ मोक्ष की समस्या पर विचार कर रहे थे। भीतर मेवाड़ की राजेश्वरी भूख से तड़पते हुये शिशुओं को घास की रोटी का टुकड़ा देकर संतुष्ट कर रही थी। कई दिन के उपवास के उपरान्त उनका ये भोजन था। इतने में एक वन बिलाव राजकुमारी के हाथ से वह टुकड़ा भी छीनकर लेगया। वह क्रन्दन कर उठी। राणा का ध्यान टूट गया। उन्होंने विलखती हुई बालिका को गोद में उठा लिया और रोने का कारण पूछा। उसकी

दुःख कथा को सुनकर राणा का अचल हृदय हिम की तरह पिघल गया। वे संधि पत्र लिखने के लिये प्रस्तुत होगये परन्तु वीर रानी ने लेखनी पकड़ कर कहा "प्राणनाथ! संधि पत्र लिखने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। यह अधिकार केवल उनको है जो हल्दी घाटी में अपने प्राणों की आहुति दे चुके हैं। यह अधिकार चेतक और झाला मान्ना को है। तुम संधि पत्र नहीं लिख सकते। यदि तुम मेवाड़ की रक्षा का भार नहीं संभाल सकते तो यह तलवार मुझे दीजिये। आज से मेवाड़ की स्वाधीनता के लिये मैं लड़ूंगी।" रानी की बातों से राणा की मोह निद्रा टूट गई और उनका मस्तक रानी के सामने झुक गया। इसी समय शत्रुओं ने घेर लिया और भीलों की सहायता से वे भूखे परिवार के साथ कहीं छिप गये।

राणा मातृभूमि को त्यागने के लिये प्रस्तुत थे कि उनकी दृष्टि भामाशाह पर पड़ी। भामाशाह उनके चरणों से जा लिपटा और अपनी अतुल संपति को अर्पण करता हुआ बोला "तुम्हें देश के लिये जीना होगा। मेवाड़ तुम्हें नहीं छोड़ सकता तुम पर मेवाड़ का अमित ऋण है। जब तक इसका उद्धार नहीं कर लेते हो, तुम ऋणमुक्त नहीं हो सकते। मेरी संपत्ति का उपयोग देश के मोक्ष के लिये जैसे चाहो कर सकते हो। मुझे विश्वास है तुम्हें विजय मिलेगी।"

भामाशाह के शब्दों को सुनकर राणा के शरीर में बिजली सी दौड़ गई और मंत्री से बोले "यदि मुझे मेवाड़ नहीं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ सकता तो मैं भी मेवाड़ को मुक्त करके ही छोडूंगा। तुम्हारी आज्ञा शिर पर हैं। यह सम्पत्ति ही मेवाड़ के भाग्य की ऊषा है।" भामाशाह चला गया। स्वाधीनता के लिये सेना एकत्र होने लगी और एक नई सुसज्जित सेना तैयार होगई। मेवाड़ रक्षक ने देवीर पर आक्रमण कर दिया, विजयी होकर कुंभल गढ़ पर चढ़ाई की। शत्रुओं को चुन चुन कर मार डाला और गढ़ पर विजय ध्वजा फहरादी। थोड़े ही दिनों में सम्पूर्ण मेवाड़ राणा के आधीन हो गया। प्रताप की कीर्ति से सारी दिशायें गूंज उठीं।

संसार के कोने कोने में अपनी कीर्ति की गुंजार छोड़ कर मेवाड़ का वीर केसरी स्वाधीनता का पुजारी वण्डोली की पावन समाधि में सोगया।

हल्दी घाटी भावात्मक प्रबन्ध काव्य है। इसमें भावों की प्रचुरता है। इसका नायक महाराणा है। उसका लक्ष्य देश की स्वतंत्रता है। उसे प्राप्त कर नायक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है इसका प्रधान रस वीर है। वर्णनों में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

यद्यपि भाषा खड़ी बोली है फिर भी कवि ने बोलचाल के उर्दू शब्दों का खूब प्रयोग किया है। भाषा पात्रानुकूल है। विषय के अनुकूल शब्दों का चुनाव है और उसमें गति है।

स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुकूल हल्दी घाटी वीर रस का श्रेष्ठ महाकाव्य है परन्तु डा० सरनामसिंह के

मतानुसार यह महाकाव्य की कोटि में नहीं आसकता। यह खण्ड काव्य है और खण्ड काव्य के सभी लक्षण इसमें मिलते हैं।

सोहनलाल द्विवेदी—

कुणाल, चित्रा, वासवदत्ता, भैरवी, युगाधार, विषपान तथा पूजागीत के लेखक सोहनलाल जी में ओज और राष्ट्रीयता पूर्ण रूप से भरी हुई है। आपके प्रत्येक छन्द में संस्कृति मुखरित होती हुई दिखाई देती है। आपकी कविता राष्ट्र की भैरवी है। और हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि राष्ट्रीय जीवन की गति आपकी कविता द्वारा सजीव हो उठी है।

आपने मुक्तक छंद को कलात्मक पूर्णता प्रदान की है। कवि की मुक्त भावना अपनी व्यंजना के लिये मुक्तक छंद ही को चुनती है। उसमें आरोह अवरोह और अनुप्रास का पूर्ण चमत्कार है। मुक्तक छंदों में 'वासवदत्ता' विजय स्तंभ है। इसके प्रकाशन के पश्चात मुक्तक छंद की बाढ़ सी आगई।

आपकी कविता का विषय अधिकांश में "गांधीजी, खादी और युग के महान पुरुष हैं"। और आपका "किसान" तो राज्य समृद्धि का स्तंभ ही है। वैरी से लोहा लेने के लिये आप "राणा प्रताप", जो भारतीय स्वतंत्रता का दृढ़ प्रहरी था, को जगाते हैं :—

मेरे प्रताप ! तुम फूट पड़ो मेरे आँसू की धारों से
मेरे प्रताप ! "तुम गूंज उठो मेरी संतप्त पुकारों से

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे प्रताप ! तुम बिखर पड़ो मेरे उत्पीड़न भारों से
मेरे प्रताप ! तुम निखर पड़ो मेरे बलि के उपहारों से ।"

देश और समाज के लिये जीवन उत्सर्ग करने वाले जवाहर, मालवीय, सुभाष जैसे वीरों के प्रति कवि सदा सचेत रहा है ।

आपकी भाषा प्रौढ़ रसानुकूल है ।

१. प्रियप्रवास

राधा

मालिनी छन्द ।

जब कुसुमित होतीं वेलियां औ लतायें ।
जब ऋतु-पति आता आम की मंजरी ले ।
जब रस-मय होती मेदिनी हो मनोज्ञा ।
जब मनसिज लाता मत्तता मानसों में ॥१॥

जब मलय-प्रसूता-वायु आती सु-सिक्ता ।
जब तरु कलिका औ कोपलों से लुभाता ।
जब मधुकर-माला गूंजती कुंज में थी ।
जब पुलकित हो हो कूकतीं कोकिलायें ॥२॥

तब ब्रज बनता था मूर्ति उद्विग्नता की ।
प्रति-जन उर में थी वेदना वृद्धि पाती ।
गृह-पथ-वन कुंजों मध्य थीं दृष्टि आती ।
बहु-विकल उनींदी, ऊबतीं, बालिकायें ॥३॥

इन विविध व्यथाओं मध्य डूबे दिनों में ।
अति-सरल-स्वभावा सुन्दरी एक बाला ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशि दिन फिरती थी प्यार के रंग डूबी ।
गृह, पथ, बहु-बागों कुंज-पुंजों-बनों में ॥४॥

वह सहृदयता से ले किसी मूर्छिता को ।
नित अति-उपयोगी अंक में यत्न द्वारा ।
मुख पर उसके थी डालती वारि छींटें ।
बर व्यजन डुलाती थी कभी तन्मयी हो ॥५॥

कुवलय दल बीछे-पुष्प औ पल्लवों को ।
निज-कलित-करों से थी धरा में बिछाती ।
उस पर यक-तप्ता-बालिका को सुला के ।
वह निज कर से थी लेप सीरे लगाती ॥६॥

यदि अति अकुलाती-उन्मना-बालिका को ।
वह कह मृदु बातें बोधती कुंज में जा ।
बन बन बिलखाती तो किसी बावली का ।
वह ढिग रह छायातुल्य संताप खोती ॥७॥

यक-थल अवनी में लोटती वंचिता को ।
तन रज यदि छाती से लगा पोंछती थी ।
थल अपर उनींदी मोह मग्ना किसी को ।
वह सिर सहलाती गोद में थी सुलाती ॥८॥

सुन कर उसमें की आह-रोमांचकारी ।
वह प्रति, गृह में थी शीघ्रता-साथ जाती ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर मृदु-बचनों से मोहनी उक्तियों से।
वह दुख व्यथिता का वेग उन्मूलती थी ॥९॥
गिन गिन नभ-तारे ऊब आंसू बहा के।
यदि निज-निशि कोई बाल होती बिताती।
वह ढिग उसके भी रात्रि में ही सिधाती।
निज अनुपम-राधा-नाम की सार्थता से ॥१०॥

मन्दाक्रान्ता छन्द।

राधा जाती प्रति-दिवस थीं पास नन्दांगना के।
नाना-बातें कथन करके थीं उन्हें बोध देती।
जो वे होतीं परम-व्यथिता मूर्छिता या विपन्ना।
तो वे आठों पहर उनकी सेवना में बितातीं ॥११॥
घंटों लेके हरिजननि को गोद में बैठती थीं।
वे थीं नाना-जतन करतीं पा उन्हें शोक मग्ना।
धीरे धीरे चरण सहला औ मिटा चित्तपीड़ा।
हाथों से थीं युगल दृग के बारि को पोंछ देती ॥१२॥
हो उद्विग्ना-परम जब यों पूछती थीं यशोदा।
क्या आवेंगे न अब व्रज में जीवनाधार-मेरे।
तो वे धीरे मधुर-स्वर से हो विनीता बतातीं।
हां आवेंगे, व्यथित-ब्रज को श्याम कैसे तजेंगे ॥१३॥
आता ऐसा कथन करते वारि राधादृगों में।
बूंदों बूंदों टपक पड़ता गाल पै जो कभी था।
जो आँखों से सदुख उसको देख पातीं यशोदा।
तो धीरे यों कथन करतीं खिन्न हो तू न बेटी ॥१४॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होके राधा विनत कहतीं मैं नहीं रो रही हूँ ।
आता मेरे युगल दृग में नीर-आनन्द का है ।
जो होता है पुलक करके आपकी चारु सेवा ।
हो जाता है प्रगटित वही वारि द्वारा दृगों में ॥ १५॥

वे थीं प्राय: व्रज-नृपति के पास उत्कण्ठ-जाती ।
नाना-सेवा स्वकर करती क्लांतियां थीं मिटाती ।
बातों ही में विभव-जग की तुच्छता थीं दिखाती ।
जो वे होते बिकल; पढ़ के शास्त्र-नाना सुनाती ॥१६ ॥

होती मारे मन यदि कहीं गोप की पंक्ति बैठी !
किम्बा होता विकल उन को गोप कोई दिखाता ।
तो कार्यों में विविध, उनको यत्नत: वे लगातीं ।
औ ए-बातें कथन करतीं भूरि-गंभीरता से ॥ १७ ॥

जी से जो आप-सब करते प्यार प्राणेश को हैं ।
तों पा भू में पुरुष-तन को, खिन्न होके न बैठें ।
उद्योगी हो परम रुचि से कीजिये कार्य्य ऐसे ।
जो प्यारे हैं परम प्रिय के विश्व के प्रेमिकों के ॥ १८ ॥

जो वे होता मलिन लखतीं गोप के बालकों को !
देतीं पुष्पों रचित उनको मुग्ध-कारी-खिलोने ।
शिक्षा दे दे विविध उनसे कृष्ण-लीला करातीं ।
घंटों बैठी परम-रुचि से देखतीं तद्गता हो ॥ १९ ॥

पाई जाती दुखित जितनी अन्य गोपांगना थीं ।
राधा-द्वारा-सुखित वह भी थीं यथा रीति होती ।
गा के लीला-स्वप्रिय-तम की वेणु वीणा बजा के ।

बातें प्यारी-विविध कहके वे उन्हें बोध देतीं ॥ २० ॥

संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना-कार्य्य में भी ।
वे सेवा थीं सतत करती वृद्ध-रोगी जनों की ।
दीनों हीनों निबल विधवा आदि को मानती थीं ।
पूजी जाती ब्रज-अवनि में देवितुल्या अतः थीं ॥ २१ ॥

खो देती थीं कलह-जनिता आधिके दुर्गुणों को ।
धो देती थीं मलिन मन की व्यापिनी कालिमायें ।
वे देतीं थीं हृदय-तल में बीज भावज्ञता का ।
वे थीं क्लेशों दलित-गृह में शान्ति-धारा बहाती ॥ ३२ ॥

आटा चींटी विहग-गन थे बारि औ अन्न पाते ।
देखी जाती सदय उन की दृष्टि कीटादि में भी ।
पत्तों को भी न तरु-बर के वे वृथा तोड़ती थीं ।
जी से वे थीं निरत रहती भूत-सम्बर्द्धना में ॥ २३ ॥

वे छाया थीं सु-जन-शिर की शासिका थीं खलों की ।
कंगालों की परम-निधि थीं औषधी पीड़ितों की ।
दोनों की थीं भगिनि जननी थीं अनाथाश्रितों की ।
आराध्या थीं ब्रज अवनि की प्रेमिका-विश्व की थीं ॥२४॥

जैसा व्यापी विरह-दुख था गोप गोपांगना का ।
वैसी ही थीं सदय हृदया स्नेह की मूर्ति राधा ।
जैसी मोहा-विरत ब्रज में तामसी-रात आई ।
वैसे ही वे लसित उसमें कौमुदी के समा थीं ॥ २५ ॥

जो थीं कौमार-वतनिरता बालिकायें अनेकों ।
वे भी पा के समय ब्रज में शान्ति विस्तारती थीं ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री राधा के हृदय-बल से दिव्य शिक्षा गुणों से।
वे भी छाया-सदृश उनकी वस्तुतः हो गई थीं ॥ २६ ॥
तो भी आई न वह घटिका औ न वे वार आये।
वैसी सच्ची सुखद ब्रज में वायु भी आ न डोली।
वैसे छाये न घन रस की सोत सी जो बहाते।
वैसे उन्माद कर स्वर से कोकिला भी न बोली ॥ २७ ॥
जीते-भूले न ब्रज-महि के नित्य उत्कण्ठ प्राणी।
जी से प्यारे जलद-तन को केलि क्रीड़ादिकों की।
पीछे छायाविरह दुख की वंशजों-मध्य व्यापी।
सच्ची यों है ब्रज अवनि में आज भी अंकिता है ॥२८॥
सच्चेस्नेही अवनिजन के, देश के श्याम जैसे।
राधा जैसी सदय-हृदया विश्व के प्रेम-डूबी।
हे विश्वात्मा-भरत-भुवि के अंक में और आवें।
ऐसी व्यापी विरह-घटना किन्तु कोई न होवे ॥ २९ ॥

---

२. साकेत

भरत और मांडवी

सौध-पार्श्व में पर्णकुटी है, उसमें मंदिर सोने का,
जिसमें मणि-मय पाद-पीठ है, जैसा हुआ न होने का।
केवल पाद-पीठ, उस पर हैं पूजित युगल पादुकाएँ,
स्वयं प्रकाशित-रत्नदीप हैं दोनों के दाएँ-बाएँ ॥

उटज-अजिर में पूज्य पुजारी उदासीन सा बैठा है,
आप देव-विग्रह मंदिर से निकल लीन सा बैठा है।
मिले भरत में राम हमें तो, मिलें भरत को राम कभी,
वही रूप है, वही रंग है, वही जटाएँ वहीं सभी ॥
बांई ओर धनुष की शोभा, दाईं ओर निषंग-छटा,
वाम पाणि में प्रत्यंचा है, पर दक्षिण में एक जटा !
आठ मास चातक जीता है अपने घन का ध्यान किए,
आशा कर निज घनश्याम की हमने बरसों बिता दिए ॥
सहसा शब्द हुआ कुछ बाहर, किन्तु न टूटा उनका ध्यान,
कब आ पहुँची वहाँ माण्डवी, हुआ न उनको इसका ज्ञान।
चार चूड़ियां थी हाथों में माथे पर कस्तूरी बिन्दु,
पीतांबर पहने थीं सुमुखि, कहां असित नभ का वह इन्दु ॥
फिर भी एक विषाद वदन के तपस्तेज में पैठा था,
मानो लोह तन्तु मोतीं को बेध उसी में बैठा था।
वह सोने का थाल लिये थी उस पर पत्तल छाई थी,
अपने प्रभु के लिये पुजारिन फलाहार सज लाई थी,
तनिक ठिठक, कुछ मुड़कर बाएँ, देख अजिर में उनकी ओर,
शीश झुका कर चली गई वह मंदिर में निज हृदय हिलोर।
हाथ बढ़ा कर रक्खा उसने पाद-पीठ के सन्मुख थाल,
टेका फिर घुटनों के बल हो द्वार देहरी पर निज भाल ॥
टपक पड़ीं उसकी आंखों से बड़ी बड़ी बूंदें दो-चार,
दूनी दमक उठीं रत्नों की किरणें उनमें डुबकी मार।
यही नित्य का क्रम था उसका, राजभवन से आती थी,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वश्रू-सूश्रूषिणि अंत में पति दर्शन कर जाती थी ॥
उठ धीरे, प्रिय निकट पहुँच कर, उसने उन्हे प्रणाम किया,
चौंक उन्होंने, सँभल 'स्वस्ति' कह, उसे उचित सम्मान दिया ॥
'जटा और प्रत्यंचा की उस तुलना का क्या फल निकला?
हँसनें की चेष्टा करके भी हा! रो पड़ी वधू विकला ॥
'यह विषाद भी, प्रिये, अंत में स्मृति विनोद बन जावेगा,
दूर नहीं अब अपना दिन भी, आने को है, आवेगा ।'
'स्वामी, तदपि आज हम सबके मन क्यों रो रो उठते हैं?
किसी एक अव्यक्त आर्त्ति से आतुर हो हो उठते हैं ?'
'प्रिये, ठीक कहती हो तुम यह, सदा शंकिनी आशा है;
होकर भी बहु चित्र अंकिनी, आप रंकिनी आशा है ।
विस्मय है, इतनी लंबी भी अवधि बीतने पर आई,
खड़ा न हो फिर नया विघ्न कुछ, स्वयं सभय चिंता छाई ॥
सुनो, नित्य जन-मन:कल्पना नया निकेत बनाती है,
किन्तु चंचला उसमें सुख से पल भर बैठ न पाती है ।
सत्य सदा शिव होने पर भी विरूपाक्ष भी होता है,
और कल्पना का मन केवल सुन्दरार्थ ही रोता है ॥
तो भी अपने प्रभु के ऊपर है मुझको पूरा विश्वास,
आर्य कहीं हों किन्तु आर्य के दिये वचन हैं मेरे पास ।
रोक सकेगा कौन भरत को अपने प्रभु को पाने से ?
टोक सकेगा रामचन्द्र को कौन अयोध्या आने से ?
"नाथ, यही कह माँओं को मैं किसी भांति-कुछ खिला सकी,
पर उर्मिला बहन को यह मैं आज न जल भी पिला सकी ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कहां और कैसे होंगे वे ?'—कह कह माँएँ रोती हैं,
'कांटे उन्हें कसकते होंगे'—रह रह धीरज खोतीं हैं ॥

किन्तु बहन के बहनेवाले आँसू भी सूखे हैं आज,
बरुनी के वरुणालय भी वे अलकों से रूखे हैं आज।
उनके मुंह की ओर देखकर आग्रह आप ठिठकता है,
कहना क्या, कुछ सुनने में भी हाय! आज वह थकता है।

दीन भाव से कहा उन्होंने, 'बहन एक दिन बहुत नहीं,
बरसों निराहार रहकर ये आँखे क्या मर गई कहीं ?'

विवश लौट आई रोकर मैं लाई हूँ नैवेद्य यहाँ,
'आता हूँ मैं' कहकर देवर गए उन्हीं के पास वहाँ ॥"

सनिःश्वास तब कहा भरत ने—'तो फिर आज रहे उपवास'।
'पर प्रसाद प्रभु का ?'—यह कहकर हुई मांडवी अधिक उदास।

'सबके साथ उसे लूंगा मैं बीते,—बीत रही है रात,
हाय ! एक मेरे पीछे ही हुआ यहाँ इतना उत्पात ॥

एक न मैं होता, तो भव की क्या असंख्यता घट जाती?'
छाती नहीं फटी यदि मेरी, तो धरती ही फट जाती !
'हाय नाथ धरती फट जाती, हम तुम कहीं समा जाते,
तो हम दोनों किसी तिमिर में रहकर कितना सुख पाते ॥

न तो देखता कोई हमको, न वह कभी ईर्ष्या करता,
न हम देखते आर्त्त किसी को, न यह शोक आंसू भरता।
स्वयं परस्पर भी न देखकर करते हम बस अंग-स्पर्श,
तो भी निज दाम्पत्य-भाव का उसे मानती मैं आदर्श ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन जानता किस आकर में पड़े हृदय-रूपी दो रत्न ?
फिर भी लोग किया करते हैं उनकी आशा पर ही यत्न।
ऐसे ही अगणित यत्नों से तुम्हें जगत ने पाया है,
उसपर तुम्हें न हो, पर उसकी तुम पर, ममता-माया है ॥
नाथ, न तुम होते तो यह व्रत कौन निभाता, तुम्हीं कहो,
उसे राज्य से भी महार्घ धन देता आकर कौन, अहो ?
मनुष्यत्व का सत्त्व-तत्त्व यों किसने समझा बूझा है ?
सुख को लात मारकर तुमसा कौन दुःख से जूझा है ?
खेतों के निकेत बनते हैं, और निकेतों के फिर खेत,
वे प्रासाद रहें न रहें, पर अमर तुम्हारा यह साकेत।
मेरे नाथ, जहां तुम होते दासी वहीं सुखी होती,
किन्तु विश्व की भ्रातृ-भावना यहां निराश्रित हो रोती ॥
रह जाता नर-लोक अबुध ही ऐसे उन्नत भावों से,
घर घर स्वर्ग उतर सकता है, प्रिय जिनके प्रस्तावों से।
जीवन में सुख-दुःख निरन्तर आते जाते रहते हैं,
सुख तो सभी भोग लेते हैं, दुःख धीर ही सहते हैं
मनुजदुग्ध से, दनुज रुधिर से, अमर सुधा से जीते हैं,
किन्तु हलाहल भव-सागर का शिवशंकर ही पीते हैं।
अब कै दिन के लिये खेद यह, जब यह दुःख भी चला, चला?
सच कहती हूँ, यह प्रसंग भी मुझको जाते हुआ खला ॥'
'प्रिये, सभी सह सकता हूँ मैं, पर असह्य तुम सब का ताप।'
'किन्तु, नाथ, हम सबने इसको लिया नहीं क्या अपने आप?

भूरि भाग्य ने एक भूल की, सबने उसे सँभाला है,
हमें जलाती, पर प्रकाश भी फैलाती, यह ज्वाला है ।।

कितने कृती हुए, पर किसने गौरव इतना पाया है ?
मैं तो कहती हूँ सुदैव ही यहाँ दुःख यह लाया है ।
व्यथा भरी बातों में ही तो रहता है कुछ अर्थ भरा,
तप में तप कर ही वर्षा में होती है उर्वरा धरा ।।'

आकर 'लघु कुमार आते हैं', बोली नत हो प्रतिहारी,
'आवें', कहा भरत ने, तत्क्षण आये वे धन्वा-धारी ।
आकर किया प्रणाम उन्होंने दोनों ने आशीष दिया,
मुख का भाव देखकर उनका सुख पाया, संतोष किया ।।

'कोई तापस, कोई त्यागी, कोई आज विरागी हैं,
घर संभालनेवाले मेरे देवर ही बड़भागी हैं!'
मुसकाकर तीनों ने क्षण भर पाया वर विनोद-विश्राम,
अनुभव करता था अपने में चित्रकूट का नंदिग्राम ।।

उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन

पाकर अहा! उमंग उर्मिला अंग भरे थे,
आली ने हँस कहा, 'कहां ये रंग भरे थे ?
सुप्रभात है आज, स्वप्न की सच्ची माया !
किंतु कहां वे गीत, यहां जब श्रोता आया ।।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ड़क रहा है वाम नेत्र, उच्छ्वसित हृदय है,
अब भी क्या तन्वंगि, तुम्हें संशय या भय है ?
आओ, आओ, तनिक तुम्हें सिंगार सजाऊँ,
बरसों की मैं कसक मिटाऊँ, बलि बलि जाऊँ ॥'

'हाय, सखी, श्रंगार ? मुझे अब भी सोहेंगे ?
क्या वस्त्रालंकार-मात्र से वे मोहेंगे ?
मैंने जो वह 'दग्धवर्त्तिका' चित्र लिखा है,
तू क्या उसमें आज उठाने चली शिखा है ?

नहीं, नहीं प्राणेश मुझी से छले न जावें,
जैसी हूँ मैं, नाथ मुझे वैसी ही पावें।
शूर्पणखा मैं नहीं—,हाय, तू तो रोती है,
अरी, हृदय की प्रीति हृदय पर ही होती है ॥"

'किन्तु देख यह वेश दुखी वे होंगे कितने ?'
'तो ला भूषण-वस्त्र, इष्ट हों तुझको जितने।
पर यौवन-उन्माद कहां से लाऊँगी मैं ?
वह खोया धन आज कहां सखि, पाऊँगी मैं ?'

'अपराधी सा आज वही तो आने को है,
बरसों की यह दैन्य सदा को जाने को है।
कल रोती थीं, आज मान करने बैठी हो,
कौन राग यह, जिसे गान करने बैठी हो ?

रवि को पाकर पुनः पद्मिनी खिल जाती है,
पर वह हिम-कण बिना कहां शोभा पाती है ?'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो क्या आंसू नहीं, सखी, अब इन आंखों में ?
फूटें, पानी न हो बड़ी भी जिन आंखों में ।।'
'प्रीति स्वाति का पिया शुक्ति बन बनकर पानी,
राजहंसिनी, चुनो रीति-मुक्ता अब रानी ।'
'विरह रुदन में गया, मिलन में भी मैं रोऊँ;
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद-रज धोऊँ ।।

जब थी तब थी, आलि, उर्मिला उनकी रानी,
वह बरसों की बात आज हो गई पुरानी ।
अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी;
मैं शासन की नहीं आज सेवा की प्यासी ।।

युवती हो या, आलि, उर्मिला बाला तन से,
नहीं जानती किन्तु स्वयं, क्या है वह मन से !
देखूँ, कह, प्रत्यक्ष आज अपने सपने को,
या सज-बजकर आप दिखाऊँ मैं अपने को ?

सखि, यथेष्ट है यही धुली धोती ही मुझको,
लज्जा उनके हाथ, व्यर्थ चिन्ता है तुझको ।
उछल रहा है यह हृदय, अङ्क में भरले, आली,
निरख तनिक तू आज ढीठ संध्या की लाली ।।

मान करूंगी आज ? मान के दिन तो बीते,
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मन-चीते ।
टपक रही वह कुंज-शिलावाली शेफाली,
जा नीचे दो-चार फूल चुन, ले आ डाली ।।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनवासी के लिए सुमन की भेंट भली वह !'
'किन्तु उसे तो कभी पा चुका, प्रिये, अली यह ।'
देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने, सखी किधर थी ?
पैरों पड़ती हुई उर्मिला हाथों पर थी ।।

लेकर मानों विश्व विरह उस अन्तःपुर में,
समा रहे थे एक-दूसरे के वे उर में ।
रोक रही थी उधर मुखर मैना को चेरी—
'यह हत हरिणी छोड़ गए क्यों, नए अहेरी ?'

'नाथ, नाथ, क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया ?'
'प्रिये, प्रिये, हां आज-आज ही-वह दिन आया ।
मेघनाद की शक्ति सहन करके यह छाती
अब भी क्या इन पादवों से न जुड़ाती ?
मिला उसी दिन किन्तु तुम्हें मैं खोया खोया,
जिस दिन आर्या बिना आर्य का मन था रोया ।
पूर्ण रूप से, सुनों, तुम्हें मैंने कब पाया,
जब आर्या का हनूमान ने हाल सुनाया !

अब तक मानों जिसे वेश-भूषा में टाला,
अपने को ही आज मुझे तुमने दे डाला ।
आंखों में ही रही अभीतक तुम थीं मानो,
अंतस्तल में आज अचल निज आसन जानों ।।
परिधि-विहीन सुधांशु-सदृश संताप-विमोचन,
धूलि-रहित, हिम-धौत, सुमन सा लोचन-रोचन ।

अपनी द्युति से आप उदित आडंबर त्यागें,
धन्य अनावृत प्रकृत रूप यह मेरे आगे ॥
जो लक्ष्मण था एक तुम्हारा लोलुप कामी,
कह सकती हो आज उसे तुम अपना स्वामी।'
'स्वामी, स्वामी, जन्म जन्म के स्वामी मेरे!
किन्तु कहां वे अहोरात्र, वे साँझ-सबेरे!
खोई अपनी, हाय! कहां वह खिल खिल खेला?
प्रिय, जीवन की कहां आज वह चढ़ती बेला?'
कांप रही थी देह-लता उसकी रह रहकर,
टपक रहे थे अश्रु कपोलों पर वह बहकर॥
'वह वर्षा की बाढ़ गई उसको जाने दो,
शुचि गंभीरता, प्रिये, शरद् की यह आने दो।
धरा-धाम को राम-राज्य की जय गाने दो,
लाता है जो समय, प्रेम पूर्वक लाने दो॥'

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. "नूरजहां"

अनारकली

थी पड़ी भूमि पर अबला बन्दीगृह दीवारों में ।
जो कल विलास करती थी शाही शयनागारों में ॥

थी दुख में पड़ी अकेली, उस अन्धकार सागर में ।
थी डूब डूब उतराती चिन्ता की चपल लहर में ॥

केवल मणिमालाओं से शर थे प्रकाश के बलते ।
जो बेध हृदय तम निश्चर का, दीपक सा थे चलते ॥

थी शीश बाँह पर रख कर रोती वह धीरे धीरे ।
छिटके केशों में चमके कंगन के तारक हीरे ॥

नीरवता में डूबा था दुनियाँ का घोर कोलाहल ।
पर हृदय हठी बालक सा हो गया और भी चंचल ॥

रव और नहीं सुन पड़ता दिल की धड़ धड़ धड़कन थीं ।
बन्दी पक्षी के पर में उड़ जाने की फड़कन थी ॥

वह मानस के छाया पट पर खींच रही थी झांकी ।
जिसने उसका कर पकड़ा उसकी मूरत वह बाँकी ॥

वह कौन घड़ी थी जिसमें यह आंखें चार हुई थी ।
जीवन में पहिले पहिले लड़कर बीमार हुई थी ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

उस कुसुम अङ्क में विलसी, सुख से मैं हिमकण बनकर ।
दिनकर ने जहाँ विलोका, मैं ठहर न पाई क्षण भर ।।
जीवन में बहुत न रुकना, रुकने में दुख ही दुख है ।
आये चल दिये चमक कर बन धूम्रकेतु, यह सुख है ।।
कुछ नहीं वासना मनमें हाँ एक साध है बाकी ।
प्यासी आँखें कर लेतीं प्रियतम की फिर इक झांकी ।।
वे लिये अंक ही में थे मैं जी भर देख न पाई ।
इन आँखों में हा! मेरी थी जग की लाज समाई ।।
वे रहे लुभाते मुझको आलिङ्गन उपचारों से ।
मैं पूज न पाई उनको यौवन के उपहारों से ।।
वे बार बार कहते थे बोलो, बोलो, कुछ बोलो ।
यह चन्द्र वदन दिखलादो, खोलो घूंघट पट खोलो ।।
क्या कहें कुसुम मुख से, तब परिमल बोली नहिं फूटी ।
जब काल सामने नाचा, तब मेरी निद्रा टूटी ।।
अब कल है निर्णय मेरा जीवन का है निपटारा ।
मैं घाट उतर जाऊँगी पाकर करवाल किनारा ।।
है विदा मांगने वाली बंधन निशि की अँधियाली ।
मुझको स्वतंत्र कर देगी आ अरुणोदय की लाली ।।
काया बंधन यह तज कर मैं कल स्वतंत्र विचरुंगी ।
बंदीग्रह की माया से हो मुक्त विहार करूँगी ।।
इस अंधकार-अंबुधि का दिनकर जलयान बनेगा ।
विश्राम जीव पावेगा या फिर संग्राम ठनेगा ।।
तुम पर कुछ आँच न आये प्रिय जीओ मैं मर जाऊँ ।

नि० २

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्दैव अनिष्ट करे क्यों ? मैं बलि हो उसे मनाऊँ ।।
तुम कुछ सन्देह न करना मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ।
मैं तन मन धन से प्यारे तेरे ऊपर मरती हूँ ।।
मैं प्रकट न कुछ कर पाई दोषी हूँ अपराधी हूँ ।
नारी हूँ लज्जा ही के परदे में मैं बांधी हूँ ।।

फिर भी इन ताल सुरों को मैं तोड़ न क्यों कर बोली ।
सँकोच लाज दुनिया को क्यों मार नहीं दी गोली ।।
वह चूक हृदय को मेरे अब टूक टूक करती है ।
बस क्षमा मांग लेने की इक चाह नहीं भरती है ।।
उस मेरे मृत्यु समय में जब लोहे से हूँ जकड़ी ।
जल्लादों ने नंगी कर तलवारें जब हों पकड़ी ।।
शोणित पीने को प्यासी करवालों की छाया में ।
यह अमर जीव हँसता हो इस मिट्टी की काया में ।।
जब जनता मूक खड़ी हो चिंतित सी दायें बायें ।
तब क्षण भर को करुणामय वह जीवन धन आजायें ।।

उस जन समूह में आँखें जब ढूंढ रही हों व्याकुल ।
जब उस वियोग सागर में हो आशा बांध रही पुल ।।
तब इस दुखिया को लखने तुम एक बार फिर आना ।
हो जाये दर्शन मेला आखिर तो है रम जाना ।।
जब नहीं कामना कोई सुख शांति भंग करती हो ।
जब सागर से मिलने सरि अन्तिम पग धरती हो ।।
जब जीवन हरी चरीं को हो न मृग चरने वाला ।
हो एक बूंद में भरने वाला जीवन का प्याला ।।

सब तारे चले गये हों रजनी का अंतिम तारा।
झिलमिल झिलमिल टिम टिम कर उड़ता हो जैसे पारा॥
दीपक स्नेह चुका हो बुझने पर होवे बत्ती।
जब हो हिसाब कर डाला चुकता कर रत्ती रत्ती॥
हत्थे से टूट गई हो, चकरा, पतंग गिरती हो।
पुतली, फिरने से पहले, प्रिय दर्शन को फिरती हो॥
बस एक छेव हो बाकी तरुवर हो गिरने वाला।
रवि कर कमंद फेंके हो चढ़ने को हो हिम बाला॥
चिर निद्रा में सोने से पहिले जब नयन बेचारे।
हो ढूंढ रहे जब तुमको तब आ जाना तुम प्यारे॥
मैं देख आंख भर तुमको निज चूक क्षमा करवाती।
तुम हँस देते स्वीकृति में, मैं हँस हँस कर मर जाती॥
आंखों में तुम्हें चुरा कर मैं आंख बन्द कर लेती।
फिर गर्दन झुका खुशी से, मैं मिलने को, सर देती॥
अन्तिम है एक विनय यह, आना अवश्य तुम आना।
है हवा भरी पालों में लंगर है रहा उठाना॥
चित में मेरी सब भूलें, तुम हो उदार, मत लाना।
कर थाम लिया अबला का तो पूरा उसे निभाना॥
मैं और न कुछ चाहूँगी तुम को पा सब कुछ पाया।
दुनिया हो गई पराई जब से तुमने अपनाया॥
मेरे कौमार्य सलिल में यदि रँग हो तुमने डाला।
यदि मेरे कोरे मन में हो भरी प्रेम की हाला॥
तो तुम्हें शपथ है मेरी, प्यारे प्यारे भावों की।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं आन तुम्हें निज प्रण की, इन हरे हरे घावों की ॥
आना अवश्य ही आना अन्तिम दर्शन दे जाना ।
सूखे में अटकी तरणी जल में ढकेलते जाना ॥
मन, इतना क्यों विह्वल है हो विवश न जो आ पाये ।
तो आँख नहीं खोलूंगी चल दूंगी ध्यान लगाये ॥
मेरे पीछे मत रोना यदि ध्यान जरा भी आये ।
मैं जी न सकूंगी मर कर कितना दृग नीर बहाये ॥
मिट्टी में लोग दबा दें तो मत समाधि बनवाना ।
जो कली नहीं खिल पाई उस पर मत फूल चढ़ाना ॥
यदि कोई करे प्रकाशित मिट्टी का दीप जलाके ।
'ठंडा' कर 'गुल' कर देना जलते को पवन डुलाके ॥
इन आँखों के मोती से मिट्टी को नहीं भिगोना ।
मत मेरे लिये जरा भी प्यारे तुम रोना धोना ॥
तुम भूल मुझे यों जाना ज्यों बालक स्वप्न सवेरे ।
पर भुला न मैं पाऊँगी तुमको हे प्रियतम मेरे ।
मैं आगे जब बढ़ जाऊँ जीवन मंजिल तै करके ।
सर में लहरी सी उठ कर निजता जल में लय करके ॥
तब देखो नाथ दुखित हो मत आंसू कहीं गिराना ।
तुम सुखमय जीवन घट में मत खारा नीर मिलाना ॥
उस तेरे मुख दर्पण में पड़ सके न दुख की झांई ।
रवि सा तू फिरे चमकता तुझ पर न पड़े परिछाहीं ॥
तुम खिले फूल से रहना रक्षा वह नाथ करेगा ।
जीवन का नियम अटल है जो जन्मा वही मरेगा ॥

इतना ही कह पाई थी त्यों द्वार किसी ने खोला ।
भारी लोहे का फाटक हटने में 'घर घर' बोला ॥
इकदम प्रकाश होने से चका चौंध हो आई ।
कुछ वेश राजसी लख कर उठ खड़ी हुई घबड़ाई ॥
मन में सलीम बसता था आंखों ने वही दिखाया ।
धुंधले में दिखलाई दी कुछ इन्द्रजाल की माया ॥

यह अकस्मात कह उट्ठी "आओ सलीम ! प्रिय आओ!
अपना अन्तिम दर्शन दे यह जीवन सफल बनाओ ॥
थी अभी याद मैं करती तुम खूब समय से आये ।"
हो प्रेम जहां सच्चा फिर हृदय न क्यों फल पाये ॥
फिर कड़क सुनी बिजली सी, आवाज कान में आई ।
"क्या सूझ नहीं पड़ता है, आँखों में चरबी छाई ?
उस लड़के के फन्दे में इतनी हो गई दिवानी ।
क्या शर्म हया सब छूटी ? गिर गया आँख का पानी ॥

मत घबड़ा तेरी मस्ती तो अभी उतर जाती है ?
मैं प्राण दण्ड हूँ देता कल की उस गुस्ताखी पर" ।
"तो कलम अभी कर दीजे हाजिर है मेरा यह सर॥"
यों सुन अनार का निश्चय अकबर भी कुछ ठंडा हो ।
बोला "हताश मत हो तुम बच सकती हो यदि चाहो॥"
अवसर देने आया हूँ फिर एक बार सुकुमारी ।
बस इस निर्णय पर निर्भर है घटना सारी ॥
तू राज मुकुट की मणि बन लड़कों का नहीं खिलौना ।
कितना चौकड़ी भरेगा मिट्टी का वह मृग छौना ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि राज्य भोग ही करना तो मेरे उर में आओ।
तुम राज करो रानी बन जीवन को सफल बनाओ ॥
तेरे इंगित के ऊपर संसार नाचता होगा।
तेरे करुणा की कोरें सब राज जाँचता होगा॥
जिस पर भ्रू बंक करोगी उसका विनाश ध्रुव मानो।
जिस पर कृपालु तुम होगी, उसको निहाल ही जानो ॥
आँखों के एक इशारे से राज उलट जावेंगे।
तू जिसे देख भर लेगी बस भाग पलट जावेंगे ॥
अपनी आँखों से देखी मैंने तेरी वह लीला।
करवाल गई गिर कर से तेरा लख रूप रसीला ॥
यदि काम बुद्धि से लोगी हो हृदय न रस से खाली।
हो आँख जौहरी तेरी यदि रत्न परखने वाली ॥
तो सिंहासन के सुख को, बन मूर्ख न ठुकराओगी।
यों हँस कर मेरे उर में, तुम दौड़ लिपट जाओगी ॥"

बस दूर दूर ही अकबर इस ओर न पैर बढ़ाना।
निज कर से छू छू करके अपवित्र न मुझे बनाना ॥
कर झटक अनार कली ने पीछे हट डाँट बताई।
हो क्रोधित थर थर काँपी, गुस्से से आँख दिखाई ॥
बोली "ओ मानी अकबर हो तुझे मान यदि प्यारा।
यदि गिर न गया हो तेरे उस मान माप का पारा ॥
तो बल दिखला अबला को अपमानित करना क्या है।
युवती पर हाथ बढ़ाना सूने में उचित भला है ?
कितनी भोली बहिनों का तुमने सोने सा जीवन।

मिट्टी में मिला दिया है छल बल का करके बन्धन ।।
तू फिर भी समझ न पाया है हृदय अभी नारी का ।
उस पर न विजय पा सकता छल बल अत्याचारी का ।।
इस कोमल तन के भीतर है हृदय कोट का मण्डल ।
जिस में न कभी घुस पाये हैं विश्व लुटेरों के दल ।।
ये नयन पताकायें हैं अति गर्व सहित फहरातीं ।
जब तक न प्रेम की चोटें, उसमें घर कर, जय पातीं ।।
कापुरुषों को भय देकर कितनों का धर्म बिगाड़ा ।
है बना महल जो तेरा परियों का एक अखाड़ा ।।
चिड़ियों सी पिंजड़े में हैं, हैं रोम रोम से रोतीं ।
छिप छिप कर अश्रु गिरा कर दाने विनाश के बोतीं ।।
वैसे ही बल दिखला कर आया है तू अपनाने ।
शाही वैभव दिखला कर चिड़िया को आज फँसाने ।।
तुम 'कम्पा' यह ले जाओ मुझ पर न लगेगा लासा ।
दृढ़ता जल में गल जावेगा तेरा जाल बतासा ।।
मैं तुम्हें न प्यार करूँगी मैं कभी नहीं कर पाई ।
तुमने कितनी ही माया मन को मेरे दिखलाई ।।
मन नहीं पास अब मेरे वह हुआ और का अकबर ।
तुम मुझको अब मत छेड़ो मैं पड़ती हूँ पैरों पर ।।
मन तो बेमोल बिका है हाथों में भोलेपन के ।
है खेल रहा बच्चे से वह रुचिर खिलौना बन के ।।
तू ईर्षा क्यों करता है ! है सारी दुनिया तेरी ।
मत छीनो रहने दो तुम छोटी सी दुनिया मेरी ।।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जीवन में अब मुझ से कुछ रखना कभी न आशा ।
तुम औरों को दिखलाना वैभव का व्यर्थ तमाशा ॥
मैं रानी नहीं बनूंगी रहने दो मुझे भिखारिन ।
मैं जपा करूंगी माला अपने प्रियतम की निशिदिन ॥
उस मन मोहन के ही में है अब तो घर मेरा ।
यदि प्राण दण्ड हो देना तो हाजिर है सर मेरा ॥"
"तुम औरों को समझाना वैराग्य नीति की बातें ।
मैं खूब समझता हूँ सब तेरे चकमे और घातें ॥
बच्चा मत मुझे समझना दुनिया है देखी भाली ।
मैं नहीं समझ पाया था तू भी नागिन है काली ॥
जो नाम है मेरा अकबर तो तुझको दिखला दूंगा ।
मैं केवल परख रहा था कुछ तुझको सिखला दूंगा ॥
जब नशा उतर जायेगा ठोकर दर दर खाओगी ।
झख मारोगी फिर आकर जीवन भर पछताओगी ॥
क्या कहती हो बतलाओ! तुम अच्छी तरह समझकर ।
है सब भविष्य का तेरे निपटारा उस उत्तर पर ॥
बोलो होती हो मेरी कुछ समझ है अब भी आई ।
"यह कभी नहीं होवेगा" दृढ़ता से वह चिल्लाई ॥
मैं मरने को बैठी हूँ बलिदान प्रेम पर करदो ।
प्यासी पृथ्वी के मुख को शोणित से मेरे भरदो ॥
"यों मार, तुझे सस्ते ही में नहीं छूटने दूंगा ।
मैं तुझे जरा दुनिया का कुछ मजा लूटने दूंगा ॥"
"ओ भाग्य हीन! जा कल तुझको यह देश छोड़ देना होगा ।

इस दुनिया से सारा नाता मुख मोड़ तोड़ देना होगा ॥
जङ्गल जङ्गल फिरना होगा पृथ्वी पर ही सोना होगा।
कोई न साथ होगा तेरे निज किस्मत पर रोना होगा ॥

तेरा सलीम वह महा दुष्ट परछाहीं देख न पावेगा।
तू पागल हो फिरती होगी वह औरों में फँस जावेगा ॥
तू उसको देख न पावेगी तू खोज खोज मर जावेगी ।
तू मान न मेरी बातों को पछतावेगी पछतावेगी ॥
जा सूर्य उदय से पहिले ही यह नगर छोड़ बाहर होगी ।
मैं अपना मन बहला लूंगा अच्छा कर लूंगा यह रोगी ॥
जा! सुन्दर थी पर हृदय हीन! मैं जीत नहीं तुझको पाया ।"
इक सांस खींच कर अकबर फिर, मुख निरख झपट बाहर आया
पीछे कपाट दो बंद हुये, जूते का शब्द हुआ चरमर ।
संतरी लगे पहरा देने, रह गई सन्न दुखिया अन्दर ॥
दुखिया अनार ने विकट विपिन में खो खो कर मग शोध लिया ।
इक छोटी सी सरिता ने आकर इतने ही में गति रोध किया ॥
था पाट नहीं उसका भारी-बस इक छलांग मृग शावक की ।
चीतल दल चंचल है चरता जिसके अंचल की दूब हरी ॥
है तपस्विनी वह कृशकाया फेरा करती मणिमाला है ।
शिव बना बना कर सलिल चढ़ाती रहती वह गिरिबाला ॥

निर्मल जल में हैं झलक रहे बालू के एक एक कण कण ।
आराध्य देव उसके अंतर में प्रकट दिया करते दर्शन ॥
वह नित घटती ही जाती है होगई सूख कर कांटा है ।
कर दिया परिश्रम ने उसके पत्थर पथ को भी आटा है ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ देर निरखती रही नदी सुनती अस्फुट कल मंत्र जाप ।
उसके दुकूल पर फिर देखा विहँगों के पग की फल छाप ॥
'काण्डर' के पीत पुष्प देखे झाऊ झुरमुट मे कूलों पर ।
फिर दौड़ गई उसकी आंखें तट के ऊपर के फूलों पर ॥
चरते चीतल भी चौंक उठे आँखें फैला इसको देखा ।
फिर चमक चौकड़ी चपल भरी उड़ गए बाण की हो रेखा ॥
इसने आंखों में फिर आंका झुक कर उस जल की गहराई ।
पर परछाईं के पड़ने को दर्पण में रोक नहीं पाई ॥
फिर सोचा आओ हल जावें छाती से ऊपर नहीं सलिल ।
पानी में पैर बढ़ाते ही कुछ लगा धड़कने उसका दिल ॥
वह नाप नाप कर पग धरती बढ़ती थी थाह, थाह लेती ।
धारा में सरक सरक जाती थी पग के नीचे से रेती ॥
एड़ी डूबी, पिंडली डूबी, घुटने डूबे, जब पैर बढ़ा ।
फिर उसके भरे नितम्बों पर धीरे ही धीरे सलिल चढ़ा ॥
कटि से लहरों के किंकण में बुद बुद के घुंघरू लटक गये ।
जल भँवरों के कितने ही दल यह कमल देख कर अटक गये ॥
उर मिल कर जीवन उर्मिल से रोमांचित होकर उठा सिहर ।
फिर उसकी ग्रीवा में लहरों ने पुलकित होकर डाला कर ॥
हो मुक्त दाम से चिकुर राशि हिल क्रीड़ा जल में करते हैं ।
कुछ भीगे वस्त्रों संग लपट तन में बालक सा डरते हैं ॥
वह सीधी बढ़ती जाती थी कर तिरछी धार बहा देती ।
अभिनव तरंग की रचना हृदगति कर, माला पहना देती ॥
पग उसके किंचित खिसक गये दो एक घूंट जल पी डाला ।

जल व्याकुल हो लोट गई आंसू सी मोती की माला ।।
जो एक हाथ मारा आगे तो कमर तलक केवल जल था ।
जो बढ़ी सपदि आगे थोड़ा, मिल गया कूल, सूखा थल था ।।
छिप गये वस्त्र थे डूब डूब उसकी आभा के पानी में ।
मानों इक मूरत गढ़ी हुई थी खड़ी सजीव जवानी में ।।
आकर समीर ने रस ले ले पट सुखला कर के फहराया ।
फिर बाल जाल को उड़ा उड़ा दृग कंज राग को गहराया ।।
पथ डूब गया था पानी में, पग-डण्डी भी आगे खोई ।
बन पशु भी भागे जाते थे पथ दर्शक मिला नहीं कोई ।।
कांटों की कूंची पद अंकों में लाल रंग भर देती थी ।
हर हरी घास, झुककर पद रज आदर से सिर पर लेती थी ।।
नग-माला में नग तरल बनी वह जग मग ज्योति जगाती थी ।
पग पग पर खग स्वागत करते मग अपना आप बनाती थी ।।
वह घनी घास को हटा हटा बेलों के जालों से बचती ।
हो चलते चलते शिथिल बड़ी कोमल तृण की शय्या रचती ।।
आगे जंगल था घना बड़ा, तरु ही तरु थे हरियाली थी ।
छिलते थे छिलके हिलने में तिल भर भी भूमि न खाली थी ।।
नीचे से पौधे नये निकल तरुवर व्यसक को बगली दे ।
वारिद सा उठते जाते थे नभ पर हरीतिमा सागर से ।।
बादल सा दल फैलाते थे उड़ जाने को नभ मण्डल में ।
लतिकाएँ प्रेम पाश से जकड़े रहतीं अपने अंचल में ।।
तृण भी वृक्षों से होड़ लगा उठते ही जाते थे ऊपर ।
लतिका-भूषित-तरु-शाख जाल में विहगों के फँस जानें पर ।।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सघन वारिधर पुष्पों की वर्षा करते ही रहते थे ।
शत शत सौरभ के स्रोत चतुर्दिक उमड़ उमड़ कर बहते थे ॥
थी ऊंची नीची भूमि कहीं चढ़ती गिरती हरियाली थी ।
खगकुल के कल संगीतों से झँकृत हर डाली डाली थी ॥
मकरंद-वीचि में मुकुल बुदबुदे फूट फूट कर खिलते थे ।
हर सुमन-घंटियाँ बजा बजा कर मधुकर मद से मिलते थे ॥

कानन काया की धमनी रमनी सी चंचल इक सरि सुन्दर ।
जीवन बाहक बन घूम रही है विश्व हृदय की इङ्गित पर ॥
जामुन की बाढ़ें बढ़ बढ़ कर दोनों कूलों की लिपट गईं ।
अथवा प्रतिरोधी सेनायें दो मल्लयुद्ध में चिपट गईं ॥
अथवा तरु अपनी रानी को परदे में लेते जाते हैं ।
पलकों में पुतली सा रख कर तारों की आंख बचाते हैं ॥
निज मन प्रवाह को ढके हुए आशा तरुओं के घूंघट में ।
सरि के संग बढ़ती जाती थी अबला भी अपनी ही रट में ॥
वे दीन जलाशय पावस के विरही बन सूखे जाते थे ।
उनके नीचे का गँदला जल पा प्यासे प्यास बुझाते थे ॥
लटका लट्टू सा 'कौड़िल्ला' जल में ज्यों शिस्त लगाता था ।
छाया अनार की पड़ते ही उसका शिकार छिप जाता था ॥
उस अंतरिक्ष के छोरों में झालर सी थी पर्वत माला ।
आकृति लख पड़ती साफ नहीं कुछ धुंधला धुंधला था काला ॥

वह दूर निकट होता जाता आगे ज्यों पग बढ़ता जाता ।
हर पद विन्यास दूर के तृण में तरु माला गढ़ता जाता ॥
जो गिरि था सूखा दीख रहा वह शनैः शनैः हो गया हरा ।

नभ श्यामल-पट पर चित्र खिंचा, फिर रेखाओं में रंग भरा ।।
थे चन्द्रमौलि के जटा जूट में निर्झर नाग हवा खाते ।
सब झील जलाशय नग वन कर उस भू-किरीट को चमकाते ।।
फिर मिली तलहटी खाई भी जिसमें जल गिर कर खोजाता ।
वह खाई जिसकी गहराई लख चक्कर सिर में आ जाता ।।
उसके तट के दो टीले मिल स्वाभाविक सेतु बनाते थे ।
जिस पर से हो अज तृण खाने पर्वत श्रृंगों पर जाते थे ।।
वह सेतु पार कर डरती सि लतिका वृक्षों का आश्रय ले ।
नभ-पर-चढ़ती-गिरि सोपानों से चढ़ती थी धीरे धीरे ।।

घासों के झुरमुट थाम थाम वह करती खड़ी चढ़ाई थी ।
था सांस फूलता जाता श्रम सीकर में डूब नहाई थी ।।
जो थल था सम्मुख दीख रहा उसका पथ था दुर्गम भारी ।
चढ़कर उतरी फिर उतर चढ़ी वह फिरती थी मारी मारी ।।
समयान्तर के प्रतिघातों से सर्दी गरमी पानी खाकर ।
था दरक गया पाषाण हृदय भी पर्वत का होकर जर जर ।।
था वेणु वंश भी उस पर्वत में अपनी वंशी बजा रहा ।
हरिताभ पताका फहराकर था गोद प्रकृति की सजा रहा ।।
वह घूमी श्रृंगों के ऊपर वह घुसी कंदरा के भीतर ।
आगे आगे अंधेरे में वह बढ़ती जाती झुक झुक कर ।।

भीतर से बाहर जो झांका वह दृश्य बड़ा ही प्यारा था ।
उस दूरबीन के शीशे में सारा जंगल इक तारा था ।।
कुछ और बड़ी आभा पाई छत से झरने से झरते थे ।
उस पत्थर की दुनिया में भी, जीवन कल कल से भरते थे ।।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस शांत निकेतन में अपने अति विकल हृदय को बहलाकर।
आगे जाने की राह न पाकर आई लौट पुनः बाहर॥
गहन विपिन में भूली भूली आई इक सरिता के तीर।
सहस करों से खींच रहा है दिन नायक जिसका वर चीर॥
वे पानी होने के भय से कृष्ण कृष्ण चिल्लाती है।
मीन व्याज तड़पी जाती है लहर व्याज बल खाती है।
अचल बने गिरि निरख रहे हैं पत्थर की करके छाती।
पानी खा, पानी पानी हो, तरुणी, है रोती जाती॥
किन्तु खड़ा वह नट नागर हो परदे में उस निर्झर के।
जल प्रपात का अम्बर देकर आब रवाँ का पट दे दे॥
मद मंथन कर दिया सूर्य का, कर अनन्त उस सारी को।
लज्जित हो फिर डूब गया रवि शीश नवा बनवारी को॥
सरसी उसको फिर मिली एक जिसमें आकाश नहाता था।
नभ हंस उतर तरंग में जिसके डूब डूब उतराता था॥
उसके तृण-संकुल कूलों पर मानव भूल न आये थे।
हो स्वेत अनिल के झोकों से नर कुल, हां, तट पर छाये थे॥
बन मुर्गी कूलों पर चरती जब मछली कहीं तड़प जाती।
तब नर कुल के उस हरे कोट में उड़ कर भाग दबक जाती॥
बन पशु आ आ जल पीते थे कुछ जल में पैठ नहाते थे।
कुछ तृण चर कर चल देते थे कुछ बैठ निकट सो जाते थे॥
चरते पशुओं को चेत हुआ चल पड़े चौंक कर कान उठा।
फिर घबड़ाहट से इधर उधर आँखें फैला फैला देखा॥
कुछ पशु सुगन्ध के लेते ही जी छोड़ छोड़ कर गये निकल।

था कान लगाए हुए अभी कुछ आहट पर इक नव मृग दल ॥
द्विज गण भी मानों खिसक गये हर ओर घोर सन्नाटा था ।
सन्ध्या थी रवि शशि के पलड़े का ठीक बीच मे कांटा था ॥
थे अभी चौकड़ी भरने को कुछ लपके थे कर कान खड़ा ।
पत्तों का चुरमुर शब्द हुआ पंचानन पवि सा टूट पड़ा ॥
इक मृग उसका पंजा खाकर चल बसा जान भागी ले जी ।
केहरी क्रोध में खड़ा रहा, सोने चल दिया रक्त फिर पी ॥
क्षण भर में यह सब काण्ड हुआ बैठी इक ऊँचें टीले पर ।
डूबी अनार थी किसी ध्यान में इसकी उसको नहीं खबर ॥

* * * *

दुःख यहां भी आ पहुँचा क्या निर्झर जो तुम रोते हो ।
किस पीड़ा में हे प्रपात गिरि से गिर जीवन खोते हो ।
तुम मत रोवो इस दुखिया के विकल हृदय को रोने दो ।
दृग अम्बुधि में छोटी सी जीवन तरि मुझे डुबोने दो ।
सरि ! सागर की विरह व्यथा में क्या तू तड़पी जाती है ।
रुक जा ! क्षण में यहीं वारि निधि मेरी आंख बनाती है ॥
दबे पांव छिपकर आई हूँ तुमसे मिलने ओ एकान्त ।
राह बता दो कहाँ मिलेगा शान्त सरस सुखमय वह प्रान्त ॥
तुम उदार हो इस दुखिया पर इतनी दया दिखा देना ।
प्रेम भुलाऊँ कैसे इतना मुझको तनिक सिखा देना ॥
मुझे देख कर सब हँसते हैं किसको व्यथा सुनाऊँ मैं ।
मन बहलाती हूँ बन बन में कैसे उन्हें भुलाऊँ मैं ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिध्वनि ! देख अकेली तू ही देती आई मेरा साथ ।
संगिनि ! इस दुखिया के संग तू व्यर्थ न रो जोड़ूं मैं हाथ ॥
मेरे संग कोई मत रोवे मुझे भाग्य पर रोने दो ।
अपने बंजर भाग्य क्षेत्र में मोती मुझको बोने दो ॥
जीवन में अब क्या है मुझको रही न कोई अभिलाषा ।
एक बार दर्शन पाने की केवल बाकी है आशा ॥
वे हैं दिव्य प्रभाकर मैं हूँ बालू की छोटी कणिका ।
मैं हिमकण की क्षुद्र बिन्दु कैसे दर्शन हो दिन मणि का ॥
आते अपने कोमल कर से मेरा अङ्क मिटा देते ।
आते मेरे घट का जीवन हाथों से ढरका देते ॥
आते छाया चित्र नयन परदे में पुःन खींच लेती ।
हो आनन्द विभोर सदा को अपने नयन मींच लेती ॥
मींच लिये दृग इतने ही में पीछे से कोमल कर ने ।
चौंक उठी, कर लगी छुड़ाने, आया कौन ? लगी डरने ॥
हाथ छुड़ा कर पीछे देखा पाया खड़ा सलीम कुमार ।
आँखों को विश्वास न आया चकित देखती बारम्बार ॥
"इतनी जल्दी भूल गईं क्या ? मैं सलीम हूँ तेरा दास ।"
"इस दासी पर यह अनुकम्पा अब पूजी मेरी सब आस ॥
क्षमा ! नहीं अपने में थी मैं, प्यासे ने है पाया जल ।
बन अनाथ के नाथ नाथ ने किया हर्ष से है विव्हल ॥"
दो आंसू तारक नभ-चख से अकस्मात् ही टूट पड़े ।
टपक पड़े कुमार दृग से भी अश्रु विन्दु दो बड़े बड़े ॥
हिचकी भी बँध गई युगल की दृग उनके हो आये लाल ।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

था सलीम आश्वासन देता, वह होती जाती बे हाल ॥
फिर सलीम के समझाने पर कड़ा हृदय कर बोली बाम ।
"हुई आज पूरी पूजा जो दर्शन यह पाया अभिराम ॥
अब जाओ तुम राज्य करो, मत बादशाह को रुष्ट करो ।
इस दासी के संग न प्यारे अपना जीवन नष्ट करो ॥
मैंने प्यार तुम्हारा पाया जो जीवन का केवल सार ।
उसे छोड़ सब क्षणभंगुर है एक अमर है सच्चा प्यार ॥
करना क्षमा भूल, सब मेरी अब मैं और न जीऊँगी ।
तुम्हें धर्म संकट में रख कर विष का घूंट न पीऊँगी ॥"
"क्या कहती हो मत घबड़ाओ हुआ सलीम तुम्हारा है ।
अपना हृदय जिसे दे डालूं किसका यहाँ इजारा है ॥
पिता करे शासन दुनिया पर मेरा मन है सदा स्वतन्त्र ।
इस पर कभी नहीं चल सकता राज दण्ड का कोई मन्त्र ॥
सुख के लिये राज वैभव है, मेरे सुख साम्राज्य तुम्हीं ।
बिना तुम्हारे जग के वैभव छूने की भी वस्तु नहीं ॥
छोड़ आगरा हम दोनों ही चैन करें चल कर लाहौर ।
कौन विलग कर सकता है अब चिन्ता करो नहीं तुम और ॥
चलो निकट ही फौज पड़ी है बिरहिन का यह छोड़ो वेष ।
सहा नहीं जाता लख कर है भोगा जो जो तुमने क्लेश ॥
पैर हुए काँटों से छलनी, छाले झल झल करते हैं ।
आँखों में हलका हो आया दृग भी छल छल करते हैं ।
सम्हलो मत अधीर इतनी हो, खा लो, हो कब की भूखी ।
होंठ तुम्हारे कृष्ण हुये हैं, लटें तुम्हारी हैं सूखी ॥"

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"नहीं वासना है विलास की प्रणय मिला दर्शन पाया।
क्षमा मांग कर अन्त समय में प्रिय का आलिङ्गन पाया॥
नहीं आपका हुक्म टालती यह लो कुछ खा लेती हूँ।
आँखों ही में तुम्हें चुरा कर आँख बन्द कर लेती हूँ॥
जो जो मुझ से चूक हुई हो उसे क्षमा करना हे नाथ।
मुझे भुला देना, मत रोना, खूब निबाहा पकड़ा हाथ॥"
कहते कहते जीभ रुक गई विष निकालता रहा कुमार।
नीचे उतर गया था वह तो घबड़ाया चीखा, लाचार॥
गिर वह पड़ी गोद में प्रिय के अन्तिम प्रिय की झाँकी कर।
बार बार रो, लगा चूमने होकर विकल अङ्क में भर॥
चाटे होंठ "अधर प्याली"! यदि विष रस थोड़ा होवे शेष।
तो थोड़ी मुझको भी देकर करो क्लेश मेरा निःशेष॥
अधरामृत विष सका नहीं दे, विलख विलख वह रोता था।
हिला हिला कर रहा जगाता, जगा नहीं जो सोता था॥

* * * *

यह अश्व वृक्ष में बँधा हुआ, है खोद रहा पृथ्वी सुम से।
है कसा हुआ सब साजों से, है देह झाड़ लेता दुम से॥
वह हींस हींस कर राज कुँवर को गर्दन हिला बुलाता है।
फिर टीले को लखता रहता, आता है कोई आता है॥
सुन हींस अश्व का सब साथी बिछड़े सवार आगये इधर।
छुट गया साथ मृगया में था, थे शोध लगाते इधर उधर॥
पहुँचे सलीम के पास वहाँ शव देख किसी का घबड़ाये।

देखा सलीम को रो रो कर सीने से शव को लिपटाये ॥
अपनी टोली को देख कुँवर, सम्हला, माँगा पानी थोड़ा ।
फिर फूल तोड़ शव को ढांका, लाने को साथ कहा घोड़ा ॥
कन्धा देता, पैदल पैदल, आँसू से पृथ्वी करता तर ।
लाहौर नगर में ले जाकर बनवाई इक समाधि सुन्दर ॥
आँसू से भीगे फूल वहाँपर विलख चढ़ाया करता था ।
घन्टों चिपटा उसकी समाधि से रो रो आहें भरता था ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. झाँसी की रानी

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,

चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

कानपुर के नाना की मुंह बोली बहिन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह नाना के सँग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,

वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद जबानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होतें उसके तलवारों के वार,
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार,

महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मी बाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियां छाई झाँसी में,
सुभट बुन्देलों की विरुदावलि सी वह आई झाँसी में,

चित्रा ने अर्जुन को पाया शिव से मिली भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

उदित हुआ सौभाग्य ! मुदित महलों में उजियाली छाई,
किंतु काल-गति चुपके चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाई,
रानी विधवा हुई हाय ! विधि को भी दया नहीं आई,

निःसन्तान मरे राजाजी रानी शोक समानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अवसर अच्छा पाया,
फौरन फ़ौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश-राज्स झाँसी आया,

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

अनुनय विनय नहीं सुनता, है विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था यह जब भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया,

रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महारानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

छिनी राजधानी देहली की लखनऊ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपुर, तंजोर, सतारा, कर्नाटक की कौन विसात,
जब कि सिंध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात,

बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी रोई रनिवासों में, बेगम गम से थीं बेजार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाजार,
सरे-आम नीलाम छापते थे अङ्गरेजों के अखबार,
'नागपुर के जेवर लेलो' लखनऊ के लो नौलखहार,'

यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरुषों का अभिमान,
नाना धुंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट आह्वान,

हुआ यज्ञ प्रारंभ, उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

महलों ने दी आग झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
वह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतर तम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ, कानपुर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,

जबलपुर, कोल्हापुर, में भी कुछ हलचल उकसानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस स्वतन्त्रा-महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुंधूपंत, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,

लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्बानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनैंट वौकर आ पहुँचा आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींचली हुआ द्वंद्व असमानों में,

ज़ख्मी होकर वौकर भागा उसे अजब हैरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी बढ़ी कालपी आई कर सौ मील निरन्तर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना-तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चलदी किया ग्वालियर पर अधिकार,

अंग्रेजों के मित्र सेंधिया ने छोड़ी रजधानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,
अब के जनरल स्मिथ सन्मुख था उसने मुंह की खाई थी,
काना और मन्दिरा सखियाँ रानी के संग आईं थी,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी,

पर, पीछे ह्यूरोज़ आगया, हाय घिरी अब रानी थी।
बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

तो भी रानी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था यह सङ्कट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आगये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार पर वार,

घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीर गति पानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

रानी गई सिधार ! चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई वन स्वतन्त्रता नारी थी,

दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।
बुन्देले हरबोलो के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ रानी याद रखेंगे यह कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय मिटादे गोलों से चाहे झाँसी,

तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

५. आर्यावर्त्त

जयचन्द

रात शेष हो गयी न आयी नींद फिर भी,
निद्राहीन राजा जयचन्द है शिविर में।

बार-बार पीता है सुरा का पात्र भरकर,
व्याकुल हो घूमता है घोर मनस्ताप में।
आज मदिरा भी उसे शाँति नहीं देती है–
अंतर की अग्नि कभी निर्वापित होती है
चाहे कोई सागर का पान करे व्यग्र हो?

आँखों में पड़ के कण भी कभी बालू की
व्यग्र कर डालती है मन को, शरीर को
किंतु यदि ज्वालामय बाण बिंधे उर में
उस मर्मान्तक व्यथा का चित्र, हाय रे!
कौन आँक सकता है, भुक्त भोगी छोड़ के!!
जयचंद ऐसा एक छिद्र बना बाँध का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाहाकार करता प्रविष्ट हुआ जिससे
कल्लोलित सिंधु, जलप्लावन मचा दिया।
डूब गयी सारी शस्यश्यामला धरित्री
डब गये ग्राम, जनपद क्षण भर में।
पीठ ठोंक शत्रु को बुलाया निज घर में,
गंगा से नहर काट द्वार तक अपने
मूढ़ ज्यों बुलाता है कराल काल नक्र को
आँगन में– कैसे हो कुशल उस नीच का।
अंतर कलह का विराट रूप यह था
स्वाहा हुआ ग्राम एक घर के प्रदीप से!
रात शेष हो गयी, न आई नींद फिर भी
निद्राहीन राजा जयचन्द है शिविर में
घोर मनस्ताप की चिता में जलता हुला,
घूमता है, रोता कभी और कभी हँसता।
शंकाकुल प्रहरी हैं देख दशा राजा की
एक दूसरे को कर-इंगित जताता है
सारी इतिवृत्ति भयपूर्ण-मूक भाव से।
पायी जयचन्द ने विजय कूटनीति की,
किंतु सुख-शांति हुई दूर तन-मन से।
गर्व परिणाम है विजय का, किंतु गर्व से
शांति रहती है दूर–नीति का प्रमाण है।
शांति चाहती है सत्य, आत्म-बलिदान, त्याग
और गर्व चाहता है विश्व को निगलना–

कैसे फिर दोनों में समानता हो, ऐक्य हो ।
जोर मारती है प्रतिहिंसा जब मन में
राजा सोचता है-"हम आज हुए विजयी ।"
किंतु जब आर्य-रक्त खौलता है तन में
घोर मनस्ताप से झुलस वह जाता है।
भीषण आघात-प्रतिघातों से विकल होके
सारी रात राजा ने गँवायी मद्यपान में
फिर भी न शांति मिली, चिंता बढ़ी चौगुनी ।
स्वर्णचूड़ बोले, हय हींसे गज गरजे,
शीतल समीर आया कुछ थहराता–सा ।
चुपचाप रात भागी ठंढी सांस छोड़के,
एक-एक करके नखत भागे भय से
पराधीन भारत के प्राँगण में रोता–सा
प्रथम प्रभात आया–रात शेष हो गयी !
प्रहरी ने आकर निवेदन किया—"प्रभो,
दूत बादशाह का है आज्ञा की प्रतीक्षा में"
"भेजो यहाँ ।"–रुकके निदेश दिया राजा ने,
काँप गया शंकाग्रस्त हृदय महीप का,
गौरी ने बुलाया था तुरन्त महाराज को
दूर समरस्थली से दुर्गम विपिन में
लाख,-लाख शिविर खड़े हैं अरि-सेना के,
मानो हो गयी हैं स्थिर सागर की लहरें ।
संख्यातीत अश्व, रथ, गज दिखलाते हैं–

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिन सकता है कौन कितने सिपाही हैं ?
आज विजयोत्सव मनाती अरि-सेना है,
नाचते हैं वीर वीर–नृत्य उन्मत्त हो,
रण-वाद्य गूँजता है– काँपती दिशाएँ हैं।
रौंदकर छाती इस भाँति आर्यभूमि की
भारत-विजेता विजयोत्सव मनाते हैं !
एक ओर गौरी का विशाल दरबार है,
घूमते हैं रक्षक कृतान्त-से भयावने
नंगी तलवारें लिये और वर्म पहने।
आँखें चौंधियाती हैं, हृदय थहराता है,
काँपती है भूमि थर-थर पद-भार से !
फ़ारस का मृदुल गलीचा है बिछा हुआ।
युत्थपति, दलपति, सेनापति बैठे हैं,
पंक्ति-बद्ध, मोड़े घुटनों को वीर भाव से
रखकर सामने कृपाण ढाल गैंडे की !
मानो सभा सज्जित हुई हो दशग्रीव की
मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि वीर बैठे हों !
बैठा है यवनपति स्वर्ण-सिंहासन पर
मणिमय सुन्दर चँदोवा है तना हुआ;
फैल रही चारों ओर रत्नसंभवा विभा
बायीं ओर बैठा जयचन्द नत-भाव से।
यत्न करता मोदपूर्ण दिखलाने का;
किन्तु नरकाग्नि जो हृदय में धुँधुआती है,

उसके धुएँ से मुख म्लान हुआ जाता है ।
संभव है, अस्त्र के भयानक प्रहारों को
कौशल से कोई भी छिपा ले; किन्तु मन की
पीड़ा छिपती है कभी, हँस के भुलाने में ?
उच्च स्वर्ण-दण्ड में पताका गजनी की यों
हाय,—लहराती मानों छाती पर देश की
साँप लोटता हो ! लाल किरणें दिनेश की,
मूर्छित पड़ी हों उस केतु दर शोक से;
किंवा किया सिक्त उसे भारत के भानु ने
अपने हृदय के घोर ज्वालामय रक्त से !
बोला शाह गौरी-"महाराज जयचन्द जी,
आपकी दया से हम विजयी हुए यहाँ ।
दूर देशवासी हैं न जानते थे पथ भी
इस महादेश का, परन्तु मिला आपका
सफल सहारा—हैं कृतज्ञ हम आपके
आज एक मेरा महावैरी शेष हो गया
शेल-सा बिंधा जो करता था मन-प्राण में ।
छिन्न भिन्न सेना हुई आज इस देश की
जैसे उड़ जाती घटा आँधी के थपेड़ों से ।
मेरे इन्हीं वीर के पराक्रम से, शौर्य से ।
देखता हूँ आज शत्रु हीना-महि हो गयी ।
आज यह देश मेरी जूतियों के नीचे है ।
चाहूँ इसे धूलि में मिला दूँ या क्षमा करूँ !

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौन है समर्थ इस कायरों क देश में
रोके जो हमारी गति, जूझे एक क्षण भी।
फिर भी सराहता हूँ वीरता म वैरी की,
हारा, किन्तु जीत से भी गौरवपूर्ण हार में।"
मौन हुआ गोरी देख चारों ओर गर्व से
सुनकर मत्त हुए जो-जो वहाँ बैठे थे,
फूल उठी छाती कड़ी तड़की कवच की,
खींच लिया खड्ग कुछ वीरों ने तड़प के
होके रणोन्मत्त से, दहाड़ उठे सिंह ज्यों
गूंजा वन, काँप गयी धरणी अधीरा हो!
नतसिर जयचन्द डूब मरा लज्जा में
किंतु हँसने का कुप्रयत्न करने लगा।
उसकी हँसी थी ऐसी देख सहृदय की
छाती फट जाती घोर पीड़ा के प्रहार से!
बोला फिर गोरी—"महाराज हम मित्र हैं
आज एक साथ विजयोत्सव मनावेंगे।
रण शेष हो गया परन्तु इन वीरों की
रण-लालसा है अभी शेष पूर्ण रूप में।
ऐसा कौन वीर अब शेष है जो रण में
एक बार जूझे इन सिंहों से दहाड़ के?"
"कोई नहीं"—बोला जयचन्द श्रांत-स्वर में
"कोई नहीं ऐसा जो बजावे लोहा आप से।
आज वीर-हीना हुई भारत वसुन्धरा

वीर-प्रसू, वीर भूमि आज पराधीन है।
ठीक हैं कि जूतियों के नीचे बादशाह के
सारा देश मूर्च्छित पड़ा है हत-तेज हो
आपकी दयाश्रिता हैं आर्यभूमि फिर भी...।"
चुप जयचन्द हुआ सहसा सहम कर
चौंककर पूछा महामानी वीर गौरी ने—
"फिर भी क्या ? बोलो महाराज मैं सुनूं जरा
"फिर भी यही कि"—जयचन्द बोला धीरे से—
"आप दया-मूर्ति हैं, भरोसा इतना ही है।"
क्षणमात्र के लिए विषाद-तम छा गया
चुप रहा गोरी एक दाँत पीस के।
घिर आयी क्षोभ की भावनी घटा वहां
किन्तु बिना बरसे घुमड़ती चली गयी।
कुछ क्षण सोच के सरोष तीव्र स्वर में
बोला बादशाह—"यहाँ लाओ सम्राट् को
सीकड़ों से बाँधकर—बैरी बलवान है।"
खौल उठा रक्त जयचन्द का तथापि वह
मूर्तिवत् बैठा रहा घोर अपमान के
सहके प्रहार भी ज्यों प्राणहीन देह हो !
झन झन शब्द हुआ दूर पर, आता हो
जैसे मत्त नागपति, स्तब्ध सभा हो गयी,
छाया आंतक रणबाँकुरों के मन में।
गोरी भी सतर्क होके बैठा, जयचन्द ने

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचा यदि भूमि फट जाती किसी भाँति तो
उसमें समा के त्राण पाता, चक्षु लज्जा से।
दीख पड़ा एक दल सैनिकों का व्यग्र-सा
आ रहा था नंगी तलवारें लिये कर में
घेरे सम्राट् को सतर्कता के भाव से।
चमक रहे थे असि, वर्म, सिरस्त्राण आदि
रक्त में लपेटे-से प्रभात की किरण में
दूर तक नभ में विकीर्ण छटा होती थी।
यह दल आया दरबार में तत्क्षण ही
बैठे जितने थे वे ससंभ्रम खड़े हुए।
गौरी ने कठोरता से कब्जा तलवार का
पकड़ा—अभागा जयचंद व्यग्र हो उठा।
लौह-श्रृंखला में बँधा जैसे करिगज हो
महाराज दिल्लीपति आये दरबार में।
मूँछें थी चढ़ी हुई, कठोर मुखमुद्रा थीं,
मानों लौह-निर्मित प्रचंड भुजदण्ड थे।
साँड-जैसे कंधे, था शिला-सा वक्ष, क्षीण कटि
जैसे मृगराज की हो—उन्नत शरीर था।
भृकुटि कुटिल, नेत्र श्येन-से सतेज थे
गति गम्भीर थी, परन्तु पद-पद से
होता था ध्वनित विकराल क्रोध मन का
भारत का पुंजीभूत गौरव-सा केसरी
दीख पड़ता था खड़ा मूर्तिमान काल ज्यों!

मुश्कें कसी थीं, बेड़ियाँ थीं पड़ी पैरों में
सिर पर नंगी तलवारों की चमक थी !
घेरे थे सिपाही पर दूर-दूर सब थे।
जिस ओर ज्वालामयी दृष्टि पड़ जाती थी
कूद कर पीछे अस्त्रधारी हट जाते थे,
कौन ऐसा वीर है खड़ा जो रहे सामने
छाती तान काल मूर्ति भीषण दुनाली के !
साहस हुआ न जयचन्द को कि एक बार
आँखें भर देखे महाराज पृथ्वीराज को।
भारत-विजेता गौरी हततेज हो गया
जैसे हो प्रदीप चपला को चकाचौंध में
तेजहीन । ढीले कटिबंध हुए वीरों के
पड़कर सामने हटात् भूखे व्याघ्र के
जैसी गति होती है शिकारी की विपिन में !
बोले सम्राट् देख चारों ओर रोष से
"गौरी, क्या विचार है-बुलाया क्यों मुझे यहाँ ?
यह जो तुम्हारे पास स्वर्ण सिंहासन पर
देश-द्रोही कायर है बैठा महा गर्व से
कल था कहाँ यह उस अन्तिम समर में ?
उड़ते थे शीश-बाँह कटकर बाणों से
नाचती थी चंडी, रक्त सिंधु लहराता था।
हाय यही दुःख है कि कल यदि पाता इसे
आज पछतावा रहता न पराजय का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व देख लेता परिणाम देश-द्रोह का।"
चुप सम्राट् हुए जैसे वज्र एक बार
वेग से कड़क के कँपाता है भुवन को!
बोला तब गौरी—"महाराज जयचन्द पर
व्यर्थ यह लाँछना है—सोचें आप मन में
डूबता वही है जिसे तैरना न आता हो
किन्तु मूढ़ दोष देते हैं तीक्ष्ण धारा को।"
"गौरी, सावधान हो"—दहाड़कर सिंह-सा
बोले सम्राट्—"रे कृतघ्न आज तू यों
रौंदता न मेरी मातृभूमि को त्रिकाल में
होता जयचन्द यदि माता का सपूत तो।
भूलता है—छः छः बार बंदी कर फिर भी
दे-दे क्षमादान तुझे भेजा था स्वदेश को!
विजय-पराजय की प्रसन्नता न शोक है
जन्म से ही आर्य खेलते हैं तलवार से,
किन्तु देख इस देश-द्रोही को समक्ष ही
छाती जलती है—इसे दूर करो दृष्टि से।'
गूँज उठी सारी सभा असनिनिनाद से
काँप उठा गौरी हिला स्वर्ण-सिंहासन तक
वीर जितने थे वे धकेल एक दूसरे को
पीछे हटे—जैसे गजराज जब जल में
करता प्रवेश है तो जल के हिलोरों से
पीछे हटता है शैवाल—क्षण भर में।

भागने को उद्यत विलोक जयचन्द को
डाँटकर गौरी ने बिठाया .उसे रोष से—
"छिः छिः महाराज, इसी वीरता के बल पर
आप बाँधते है तलवार—धिक्कार—है !
क्या कर सकेगा वह बंदी भला आपका
हिल सकता जो नहीं अपनी जगह से !
बोला कुछ रुक के सरोष, रुक्ष बाणी में—
'दिल्लीपति ऐसी ही व्यवस्था किये देता हूँ
जिससे भविष्य में न आप कभी भूल के
देखें महाराज वीर-श्रेष्ठ जयचन्द को
लाओ दो शलाखें लाल करके अभी यहाँ
आँखें लो निकाल महाराज दिल्लीश्वर की
देखने की चिंता से छुड़ा दो सम्राट् को।"
सुनकर गौरी का निदेश जयचन्द ने
चाहा कुछ करना निवेदन परन्तु हा,
भय ने दबाया गला कंठ रुद्ध होगया।
होता है न साहस पतित के हृदय में
सक्रिय विरोध करने का—अन्याय का !
बोले सम्राट्—"धिकार है यवनपति,
वीरोचित धर्म नहीं सीकड़ों से बाँध के
अत्याचार करना—असंख्य धिक्कार है !
कायरों-सा कर्म है तुम्हारा—सारी वसुधा
नित्य धिक्कारेगी तुम्हारी इस नीति को।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहस हो, खोलो सीकड़ों को तलवार दो
सामने खड़े हो फिर देखो क्षण भर में
बाजी लौट आती है महान् आर्य-देश की।
मान जावें पंच हम पाव भर लोहे को
दे दो शेष निर्णय का भार तलवार को।"
एक बार पीसकर दाँत महा योद्धा ने
मारा झटका तो छिन्न-भिन्न हो के शृंखला
छिटक गई यों मानो ओले पड़े नभ से।
गरजा सरोष महाबाहु–बल–विक्रमी
तोड़ डाला बेड़ियों को खींच क्षण भर में
कौंध गयी बिजली सभा में, भयत्रस्त हो
योद्धा जितने थे अस्त्र-शस्त्र निज फेंक के
भागे हल्के हो, एक दूसरे को रौंदते।
फैल गया हाहाकार सेना के शिविर में
कूदा सिंह मानो शान्त बैठे मृगयुत्थ में।
भाग चले गौरी आदि और रणबाँकुरों ने
घेर लिया अस्त्र-शस्त्र लेके सभा-भूमि को
गौरी का निदेश हुआ-"जीता ही पकड़लो"
किंतु कौन जाता मरने को वहाँ स्वेच्छा से
था जहाँ कृतांत-सा कराल वीर केशरी
बन्धन-विमुक्त हो कृपाण लिये कर में।
दिल्लीपति बोले—"शीघ्र भेजो जयचन्द को
आज मैं मिटा दूँगा कलंक आर्यभूमि का।"

स्तंभित सिपाही हुए रौद्रमूर्ति देख के
काँप उठा पत्ता-सा हृदय एक-एक का।
चित्रवत् सेना घेर चारों ओर थी खड़ी
घूमता था दिल्लीपति, बीच में मृगेन्द्र-सा।
जिस ओर आगे बढ़ता था रौद्र तेज से
विद्यु कौंध जाती, भगदड़ मच जाती थी।
लाये गये फंदे, कुछ साहसी सुभट मिल
फाँसने का यत्न लगे करने नरेन्द्र को
घेर कर शिक्षित गयंदों से, परन्तु गज
खाके बार-बार गजबाँक के प्रहार भी
पीछे हटते थे—चिग्घाड़ कर भय से!
चमक रही थी तलवार आर्यपुत्र की
आँखें झुलसाती हुई कौंध के समान ही।
मानो लिये ज्वालामय वज्र निज कर में
वज्री वीर वासव घिरा हो मेघ-दल से!
सुंड कटे कितने गजों के और कितनों के
मस्तक विदीर्ण हुए प्रबल प्रहारों से।
चारों ओर रक्त का आवर्त बना वीर के
जैसे रवि राजता हो मध्य परिवेश के!
आ गयी दुपहरी दिनेश मध्य नभ में
स्वर्ण रथ रोक लगे देखने स्ववंश के
अंतिम प्रदीप का प्रकाश रण-झंझा में।
वायु गतिहीन हुई—मानो साँस रोक के

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखता निसर्ग हो फलाफल समर का।
एक ओर पूरी सैन्य शक्ति गजनीश की,
एक ओर भारत का शेष आर्य वीर था।
किंतु हततेज थे असंख्य तारा-तारापति
भासमान केवल था भास्कर भुवन में।
दिल्लीपति एक था तथापि वह विद्युत-सा
यत्र-तत्र-सर्वत्र कौंधता था वेग से
घेरे थे सिपाही, गजरोही हो चकित-भीत,
किस ओर वीर है समझना कठिन था।
कितने गयंद भागे रौंदते सिपाहियों को
हाहाकार छा गया विकल गौरी हो उठा!
एक बार हल्ला बोल फिर अरि टूट पड़े
घेरा किया छोटा फिर फंदे लगे फेंकने।
शत-शत रेशम की डोरियाँ थीं—हाय रे,
काट सकता था कितनों को—यमपाश से
मुक्ति है असंभव, पराक्रम भी व्यर्थ है।
देखते ही देखते विवश वीर हो गया
मानो आंजनेय बँधे घोर ब्रह्मफाँस में।
अंग-प्रत्यंग कसा वीर आर्य पुत्र का
छा गयी हुलास की लहर अरिदल में।
यद्यपि विवश थे नरेन्द्र पर साहस था
किस रणबाँकुरे में, जाता जो निकट भी।
आया तब गौरी तलवार लिये सहमा

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया जयचन्द महाव्यग्र-सा, सभीत-सा
धूलि में पड़ा था फँसा रस्सियों के फंदे में
अरिमान-मर्दन सपूत आर्यभूमि का !
बोला तीव्र स्वर में कटाक्ष करता हुआ
गोरी—"अहा, दिल्लीपति धूलि में हैं लौटते
आप नरनाह हैं, धनी हैं तलवार के
उठिये, हमारी यह धृष्टता क्षमा करें।
उत्तर दिया यों दाँत पीस के नृपेन्द्र ने
"इच्छा कर पूरी—मत विद्ध कर मर्म को
इन वाक्य-वाणों से, अटल विधि-रेखा है।"
बोला फिर गौरी—"महाराज, अब आपकी
इच्छा करता हूँ पूर्ण शीघ्र—अरे दौड़ के
लाओ दो शलाख़ें लाल करके नरेन्द्र की
आँखें लो निकाल इन्हें देखने से मुक्ति दो।"
पृथ्वीराज बोले—"हाय भारत वसुन्धरे;
आर्यभूमि आर्यावर्त, आर्यप्रतिपालिता !
एक बार देख लूँ तुम्हारी सौम्य मूर्ति मैं
आँखें भर, सम्भव नहीं है इस जन्म में
देखूँगा तुम्हारा शस्यश्यामला स्वरूप मैं,
फैले दूर—दूर तक खेत मनभावने,
स्वर्णमय शस्य पर सन्ध्या के समीर का
खेलना, उठाना हाय लहरें समुद्र-सी
मानो लहराता स्वर्ण अंचल तुम्हारा हो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीकों के विजेता की पताका किसी काल में
हाय लहराई इसी अम्बर के नीचे थी।
एक बार देखलूँ मैं भारत के नभ को!
बार-बार गूँजा था हमारी मातृभूमि के
जय-जयकार नाद से वही तो यह नभ है
कल गूंजेगा जो असंख्य पराधीनों के
रोदन-विलाप से विफल हाहाकार से।
साक्षी हैं दिनेश, आर्य-जाति की विजय के,
साक्षी हैं दिनेश, जार्य-जाति के विभव के
आज बनो साक्षी देव, घोर पराजय के
आज बनो साक्षी आर्य-भूमि के विनाश के।
भारत के भानु का उदय आज देखा था
अच्छा हुआ, देखूँगा न अस्त दिनमणि का।"
आ गयीं शलाखें लाल होकर तुरन्त ही—
"आँखों में घुसेड़ दो।"—पुकार कहा गौरी ने
किन्तु चढ़ीं त्योरियाँ विलोक सम्राट् की
आगे बढ़ने से डरते थे जल्लाद भी
ग़ौरी फिर गरजा—"अपाहिजो, क्या भय है?
आँखें लो निकाल, जो विलम्ब किया अब तो
खाल खिचवा लूँगा इसी दम खड़े खड़े!"
दौड़े जल्लाद चढ़ छाती पर वीर की
आँखों में घुसेड़ दीं शलाखें लाल जलतीं
कम्पित करों से, बन्द आँखें कर अपनी।
छन-छन शब्द हुआ और धुआँ निकला

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर रक्त–धारा का फुहारा चलने लगा !
जयचन्द आँखें मूँद दीर्घश्वास छोड़ के
पीछे हटा किन्तु वह कल्पना की आँखों को
कैसे बन्द करता प्रयत्न लाख करके ।
आया चित्र पहले स्वतन्त्र आर्यजाति का,
आया फिर, दूसरा घृणित चित्र आज का,
एक चित्र में था भरा रङ्ग स्वाभिमान का
दूसरे पे कालिख पुती थी अपमान की ।
रखकर दोनों को समक्ष आह भरकर
राजा जयचन्द लगा देखने विकल हो ।

* * *

आह भी न निकली नरेन्द्र के हृदय से
फूट गयीं आँखें और साथ उन्हीं आँखों के
क्षणमात्र में ही भाग्य फूटे आर्य भूमि के ।
बोले महाराज पृथ्वीराज क्रोध भरके
"धन्यवाद गौरी—यह अच्छा किया तुमने,
देख मैं सकूँगा नहीं अब इस जन्म में
तेरे द्वारा दलित-पवित्र-मातृभूमि को ।"

* * *

बैठा है सभा में जयचन्द शान्त भाव से
मानो गिरि ज्वालामुखी उर में भरे हुए
दीख पड़ता हो ध्यान-मग्न–सा, प्रशांत–सा ।
ऊपर हरीतिमा है, नाचते हैं निर्झर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूजते हैं सरस विहंगम, तितलियाँ
मुख चुमती हैं सुमनों के मदमत्ता हो ।
लोनी-लोनी नवल लताएँ लहराती हैं
किन्तु अन्तराल में अदम्य विस्फोट का
होता आघात-प्रतिघात है भयावना
बाहर की शांति पूर्वाभास है प्रलय का !

झलमल होते ह विविध रत्न खम्भों में
स्वर्णमयी सुन्दर दिवालों की चमक से
आँखें चौंधियाति हैं-हृदय ललचाता है ।
छत्रधर रूप में मनोज्ञ मनसिज हैं
छत्र लिए मोतियों का; झालर है झूलता ।
चँवर लिये हैं अप्सरा-सी चारु चेरियाँ
मद विह्वलाक्षी, भरा यौवन छलकता ।
सज्जित सभा है नाटचशाला-सी मनोहरा
आ रहा है त्रिविध समीर मधुमास का
फूले हुए फूलों की महक भरे श्वास में ।
सुन पड़ती है कूक कोयल की दूर से
वेणु और वीणा बजती है सम-स्वर मं
गा रही है गायिका पिकी-सी मदमत्ता हो
सुमधुर स्वर गूँजता है, अलसित-सा
मानो स्वर-धारा पर नृत्य करती हुई
उतर रही हैं मूर्च्छनाएँ गीत लोक से !

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठे हैं सभासद् सदर्प वीर-वेश में
राजती है कलगी अनोखे उष्णीष में
छिटक रही है रम्य रत्न–संभवा विभा ।
घूमते हैं प्रहरी कृतांत–से भयावने
उन्नत शरीर पर कवच कसे हुए
एक–एक पग धरते हैं मत्तनाग–सा
जैसे घूमते हैं सिंह निर्जन कछार में ।
सारी सभा मन्त्र–मुग्ध–जैसी बनी बैठी है
किन्तु जयचन्द का हृदय रह–रहकर,
उठता है व्यग्र हो, अधीर हो अशांत हो !

आया वृद्ध चारण अतीत का प्रतीक–सा
श्वेत वस्त्र और झुर्रियों से भरा चेहरा ।
अस्थि–चर्मावशिष्ठ देह जराक्रांत थी
किन्तु इस्पात–सी कठोर दिखलाती थी ।
हाथ में थी यष्टि कटि में थी झूलती
लम्बी तलवार झुकी पीठ पर ढाल थी,
मानो लदा पीठ पर यौवन का भार हो ।
दाढ़ी थी चढ़ी हुई, उमेठी कड़ी मूँछें थीं ।
आँखें जलती थीं घुसी कोटर के गर्त में
नखदंतहीन वृद्ध व्याघ्र–सा भयावना
आया जब चारण—सतर्क सभा हो गयी ।

गान रुका और रुकी वेणु–वीणा मुखरा
मानो देख ग्रीष्म की ज्वलामयी मूर्ति को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस वसंत का हृदय थहरा उठा ।
भूल गये कुजना विहंग, भीत मधुकर
भागे सरसी की ओर कंज की शरण में ।
छाया लगी खोजने सुठौर छिप जाने की !
जयचन्द बोला मुस्काता हुआ वृद्ध से—
"कैसे किया आपने अनुग्रह— कुशल है ?"
बोला तब चारण प्रणाम करता हुआ—
"पृथ्वीनाथ, आपका प्रतापादित्य जब लौं
भासता है अम्बर में कैसे तमरूपिनी
आपदा निगल सकती है प्रजाजन को !
हम हैं पदाश्रित विशेष कृपा पात्र हैं
महाराज, चेरी है कुशल इस दास की !"
चुप हुआ चारण, सभासद हुलास से
"जै जै महाराज की" पुकार उठे सहसा ।
गूंज उठी सारी सभा—शांति फिर छागई
किन्तु दुर्दैव मुस्काया क्रूर–व्यंग से !
बोला तब चारण—"कृपालु, इस दास को
दे दो क्षमा–दान तो विकलता हृदय की
राज–चरणों में मैं निवेदन करूँ प्रभो !"
जयचन्द बोला—"कवि गौरव हो स्वदेश के
बोलो, तुम क्षम्य हो त्रिकाल में सदैव ही ।"
"धन्य महाराज"—कहा चारण ने झुक के
सारी सभा उत्सुक हो बैठी साँस रोक के ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जय हो महाराज की"–दहाड़ बोला वृद्धयों
पृथ्वीनाथ ! — रात एक स्वप्न देखा दास ने
देखा, एक निर्जन उजाड़ खुला प्रान्त था
तृणहीन–मानो भाग्यभूमि हत भागा की !
वृद्धा एक आहत हो लोटती थी भूमि में,
सोने का किरीट पड़ा दूर—टूक–टूक था,
सिंह एक लोटता था छिदकर बाणों से,
रक्त बहता था मृगराज के शरीर से ।
फूटा हुआ मंगल-कलश था पड़ा हुआ,
एक ओर टूटी तलवार थी भयंकरा
मानो गिरा अम्बर से चंद्रमा द्वितीया का
वृद्धा का शरीर क्षत–विक्षत था हाय रे
बेड़ियाँ थीं पैरों में—बँधे थे हाथ उसके,
चोंच मारते थे गृद्ध जीवित शरीर पर ।
नोचते थे स्यार और स्वान घेर रोते थे
चीख उठती थी वह आहता कभी–कभी
आया इतने में एक दैत्य महारोष से
कोड़ा लिये—मूर्ति हो कराल यमदूत की ।
सहसा दिशाएँ हुई दग्ध घोर ज्वाला से
गूँज उठा नभ में विलाप नर–नारी का
दौड़ा वह दैत्य दांत पीसता दहाड़ता
रौंदा निज पैरों से किरीट को, कराह के
वृद्धा ने कहा यों—"अरे पातकी, दया करो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अपमान है असह्य, मैं विवश हूँ
धोखा दिया मेरे वीरपुत्र जयचन्द ने
होते यदि मेरे वे सपूत तो त्रिकाल में
साहस न होता तुझे स्वप्न में भी भूल के
इस ओर झाँकने का विधिगति वाम है।"
जिस भाँति तड़िता तड़पती है नभ में
ठीक उसी भाँति उस दानव ने कूद के
मारी एक लात उस वृद्धा के हृदय पै
और फिर गूँजा वायुमण्डल कराह से
कुछ क्षण सोचकर वह भीम दैत्य फिर
वृद्धा पर हाय लगा कोड़े फटकारने।
वह दृश्य हृदय-विदारक था, क्रूर था
सोचें महाराज, सोचें जो-जो यहाँ बैठे हैं!
देव, पूछता हूँ, पूछता हूँ प्रत्येक से
कोई समझा दे मुझे यह स्वप्न मिथ्या है
कोई समझा दे मुझे यह स्वप्न स्वप्न है
कोई समझा दे मुझे यह स्वप्न तुच्छ है।"
रोया वृद्ध चारण, सभासद अधीर हो
रोये, महामानी जयचन्द हुआ व्यग्र-सा।
रोये, गायिका भी, छत्रधर छत्र रख के
रोया और चेरियाँ विलाप करने लगीं,
भूलकर संचालन करना चमर का।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोये वीर प्रहरी कृपाण रख म्यान में
इस भाँति सारी सभा आँधी में विषाद की
सूखी पत्तियों-सी क्षण मं ही उड़ने लगी।
फिर बोला चारण यों वाष्परुद्ध कंठ से—
"जब आर्य-भूमि इस भाँति पराधीना है
और जब डूबी लाज आर्य-करवाल की
घृणित पराजय की कालिमा में सहसा
ऐसी घड़ी में भी हम बैठ कर मोद में
यदि झूमते हैं मद पी के उन्मत्त हो
फिर किस मुँह से कहेंगे कभी गर्व से
हम आर्यपुत्र हैं, हमारा यह देश है।
खोके आत्मगौरव स्वतंत्रता भी जीते हैं
मृत्यु सुखदायक है वीरो! इस जीने से।"
दीर्घ श्वास छोड़ के महीप स्वप्नाविष्ठ-सा
सहसा खड़ा हुआ विसर्जित सभा हुई।
जितने सभासद वहाँ थे प्रलयंकरी
ज्वाला उर-अंतर में भर के बिदा हुए,
चिंताग्रस्त मंत्री चले सेनापति क्रोध में।
चारण का एक-एक शब्द वज्रनाद-सा,
हृदय कँपाता हुआ गूँज गया नभ में!

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी मोदपूरिता सोहागवती रजनी
चाँदनी का आँचल सँभालती सकुचती
गोद में खेलाती चन्द्र, चन्द्रमुख चूमती !
झिल्ली-रव गूँजा, चलीं मानो वन-देवियाँ,
लेने को बलैया निशा-रानी के सलोने की।
फूल उठे कुमुद सरोवरों में मोद से,
सोये पालने में शिशु विहँसे स्वपन में।
भूमि से गगन तक उस मुस्कान की
फैली विभा बनके सुवास बन-फूलों की !
राजा जयचन्द घूमता है आत्महारा-सा
निर्जन उदास पूर्ण शान्त उपवन में।
दीर्घ श्वास छोड़ता है और कभी रोष से
दाँत पीसता है बाँधकर दृढ़ मुट्ठियाँ।
व्यग्र है महीप उग्र भावों के झकोरों में
मानों बिना नाविक की नैया पड़ी धारा में।
फूटने के ज्वालामुखी पूर्व महीधर की
जैसी गति होती है भयानक, अधीरता
फैलती है और काँपती है भूमि डगमग।
राजा व्यग्र हो के घूमता है उपवन में
सुख स्वप्न जैसी निशा बीती चली जाती है।
ऊँघते हैं प्रहरीं कृपाण लिये कर में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँघती हैं बैठ अवरोधन * में महिषी !
ऊँघता है झिलमिल प्रदीप एक कोने में
जलते हैं शलभ थके-से निरानन्द से ।
ऊँघती है सुन्दरी सलोनी नेत्ररंजिनी
गायिका अधिरा बनी वीणा लिये गोद में,
और झंकार ऊँघती है मूक तारों में ।
ऊँघती-सी आती है बयार मधुमास की
मधुयामिनी की सखी मधुमय वेला में ।
जलकर शेष हुआ धूप धूपदानों में
अनाघ्रात पुष्पमाल्य हाय कुम्हला गये
बिखरी पँखुरियाँ गुलाब की कराह के ।
मोद भरी सखियाँ थकी-सी लगीं ऊँघने
फीके पड़े अंगराग––ढीली पड़ी कवरी
ठंडे पड़े बेसर के मोती ओस-कण ज्यों ।
निद्राकुल पीत शशि ढीली रास छोड़ के
अस्ताचल ओर चला मृगरथ हाँकता ।
चिन्तामग्न राजा घूमता है उपवन में
होकर विदेह-सा बिसार आत्मचेतना
बन्द हुईं आँखें––हुआ शिथिल शरीर भी
खुल गये कल्पना के नेत्र महिपाल के ।
दीख पड़ी वृद्धा पराधीना, दीना-बंदिनी

* अवरोधन=अन्तःपुर ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यभूमि, रक्त बहता है अंग-अंग से।
आहत मृगेंद्र दम तोड़ता है पीड़ा से
लाख-लाख बच्चे लोटते हैं छिदे बाणों से
कुचले हुए हैं अंग उनके, कुसुम को
कुचल दिया हो जैसे मत्त करिराज ने !
रोती हैं असंख्य ललनाएँ सिर धुन के
पुत्र-पति-हीना, लुटी लाज आज जिनकी।
देखा उस वीर ने मसान एक जागता,
संख्यातीत मुर्दे पड़े हैं रक्त-कीच में,
स्यार और गृद्ध जिन्हें नोच-नोच खाते हैं।
डमरू बजाती हुई नाचती पिशाची हैं,
कर में त्रिशूल लिये नृत्यरत प्रेत हैं।
जलती दिशाएँ हैं, समीर मानो ज्वाला हो
झुलस गयी है शस्य श्यामला धरित्री।
मेघ जलते हैं शून्य अम्बर में रूई-सा,
जलते महीधर हैं और घोर नाद से,
गूँजता है अंबर शिलाएँ जब फटतीं।
बरस रही है तप्त राख दीप्त नभ से,
दीख पड़े पृथ्वीराज इस महानाश में,
कूदते हैं नंगी तलवार लिये कर में।
धधक रहा है रुद्र-तेज यों नयन से
जैसे हो निकलती दुनाली से तड़पती
ज्वाला, वायुमण्डल को फाड़ती-दहाड़ती।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते ही रौद्रमूर्ति वीर पृथ्वीराज की
चीख उठा राजा, ज्यों सहसा पथिक के
सामने भयानक मृगेंन्द्र कूदे काल-सा
केशर खड़ा किये, निकाले दंत क्रोध में !
जागृत स्वपन था तथापि जयचन्द ने
खींची तलवार और दौड़ पड़े प्रहरी ।
थर-थर काँपता था भीग के पसीने से
भयभीत राजा, घेर रक्षक खड़े हुए ।
होकर सचेत फिर लज्जित हो मन में
अन्तःपुर ओर चला—लौट चले प्रहरी
एक दूसरे को देख मंद-मंद हँसते ।
दासियाँ सशंक हुईं, व्यग्र राज-महिषी
देख दशा राजा की विकल रनिवास था ।
आयी महारानी रुद्ध घर के कपाट को
देख पतिप्राणा हुई हतचेत चिंता से ।
साहस न होता था किसी को एक शब्द भी
एक दूसरे से बोलने का—मूक भाव से
—प्रश्न उर-अन्तर में भर के थीं घूमती;
दैव को मनाती थीं—विलोचन भरे हुए ।
आँसुओं से आँखें व्यग्र-वाष्प-व्यग्र कंठ था ।
बन्द कर भीतर से द्वार शून्य घर में
जयचन्द चिन्ता मग्न होके लगा सोचने—
"आज महाराज पृथ्वीराज शेष हो गये,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस भाँति कौशल से विजय मिली मुझे,
किन्तु फाड़ जीत के कठोर वज्र हिय को
झाँकती पराजय प्रकाशमान रूप में।
मूर्खता है छत्रक की आड़ में नगेश को
छल से छिपाना—है घृणित आत्मवंचना।
अम्बर से भूमि तक शून्यता है जितनी
आज वह पूरिता है घोर धिक्कार से।
कैसे मैं छिपाऊँ इस अधम शरीर को—
कोटि-कोटि रोषपूर्ण जलते नयन से।
कोटि-कोटि उठती उँगलियाँ हैं—अब क्या
सम्भव है निज को छिपाना, धिक्कार है।
मथकर द्वेष-सिन्धु मैंने महा यत्न से
बाहर निकाला जिस घोर हलाहल को
उसकी विषाक्त घोर ज्वाला से तड़पती
झुलस रही है मातृभूमि निरुपाय हो।
हाय, बना मैं ही इस नीच नर-मेध का
पातकी पुरोहित—बनूँगा अब समिधा।
हार गया पार्थिव शरीर दिल्लीपति का,
आज वह अन्धा बना, बंदी बना गौरी का,
किन्तु दिव्य यशःशरीर उस आर्य का
मुक्त है, सबल है, चिरंतन है, सत्य है।
सम्भव नहीं है उसे खड्ग के प्रहार से
खंड-खंड करना, मिटाना, नाश करना।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज पृथ्वीराज की सुकीर्ति दाँत पीसती
नाश किये डालती है मेरे यश-मान को।
साहस नहीं है कभी रूप देखूँ अपना
भूल से ही मुकुर उठाके एक बार भी,
नित्य धिक्कारता है मेरा मन मुझको,
निश्चय ही चारण ने सत्य कहा क्षोभ से—
"मृत्यु सुखदायक है, वीरो, इस जीने से।"
हाथ जोड़ बोला साश्रु नयन महीप यों—
"मातृभूमि, इस तुच्छ जन को क्षमा करो!
धोऊँगा कलङ्क रक्त देकर शरीर का!
आज तक खेयी तरी मैंने पाप-सिंधु में
अब खेऊँगा उसे धार में कृपाण की।
विनय यही है महामाया के चरण में—
साहस दो, धैर्य दो, पराक्रम दो, बल दो,
और आर्य-गौरव का उज्ज्वल प्रकाश दो"

* * * *

बरस रही है शशि-सम्भवा विभा वहाँ,
मानो चूर-चूर हो नीहारिका गगन से,
बरस रही है रश्मियों का रूप धर के।
बैठा जयचन्द है उदास और म्लान-सा
देखता है चुपचाप अनिमेष दृष्टि से
शान्त सरिता की नील ज्योत्स्ना-स्नात धाराएँ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान पड़ती थीं मानो विगलित चन्दिका,
वन के प्रवाह सरिता का, बही जाती है
दूर-दूर मन्त्री मन्त्र-मुग्ध बने बैठे हैं,
चिन्तामग्न—त्रिविध समीर के झकोरों में
फूले हुए फूलों की महक है भरी हुई।
कवि चन्द बैठा है प्रशांत गिरिवर-सा,
उन्नत प्रासाद पर गोपनसी* दिव्य है,
दूरस्थित वन की यों रेखा दिखलाती है
मानों नील अम्बर में असित किनारि हो।
गन्धपूर्ण तैलवाले दीपों का प्रकाश है
सिर धुनती है शिखा वायु के झकोरों में
त्याग दीर्घ श्वास जयचन्द कहने लगा—
"कविवर, आप अब पत्र महारानी का
पढ़ के सुना दें"—उठकर कवि चन्द ने
सादर झुकाया सिर फिर दिव्य खाम से
पत्र किया बाहर लगाके उसे सीस से
कहने लगा यों—"महाराज ध्यान दीजिये।"
होके उद्ग्रीव बैठे, जो-जो वहाँ बैठे थे,
कवि कण्ठ गूंज उठा स्वाति-मेघ-मन्द-सा,
चातक-से तृषित उपस्थित जो थे वहाँ
एक-एक बूंदवत् एक-एक शब्द को
लालायित हो के हृदयस्थ करने लगे।

---

*गोपनसी=छज्जा, बरामदा।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र संक्षिप्त था कटार-सा, जो वेग से
फाड़ पंजरों को घुस जाता हैं हृदय में।
पत्र में लिखा था–"आर्य-जननी की जय हो,
आप जानते हैं सब वृत्त आर्य-भूमि का
आप ही पुरोहित थे इस नाश-यज्ञ के।
आप बने सूत्रधार प्रेरित हो ईर्ष्या से
इस तुच्छ नाटक का —आप आर्यपुत्र हैं,
फिर भी अनार्यों को बढ़ावा दिया आपने
रौंदने में आर्य-जननी को–महा शोक है।
पातक अनेक हैं भयानक तथापि यह
देशद्रोह ऐसा घोर पाप है कि जिससे
काँपता है नरक –अधीरा धरा होती है।
देशद्रोहियों को अधिकार है न जीने का,
इनसे घिनाता है मरण भी इसीलिये
अब तक घृणित शरीर यह आपका
जीवित है, जीवित पिशाचवत्–खेद है।
आपने कलंक-कालिमा को निज इच्छा से
सिर पर लादा है परंतु हमें आशा है,
अब भी विरत होंगे इस तुच्छकर्म से।
भूलें मत स्वप्न में भी इस कटु सत्य को
भारत-अधीश्वर हैं सोये महानिद्रा में,
किन्तु तलवार अभी जागती है उनकी,
और वैसा ही कड़ा पानी है चढ़ा हुआ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछती नहीं है यह प्रश्न 'संयोगिता'
पूछती है भारत-अधीश्वरी–क्या इच्छा है।"
उस दीन श्येन-सी दशा थी जयचंद की
जो हो घिरा धूलि भरी अंधाधुंध आँधी से,
अस्त-व्यस्त पंख हो गये हों और आँखों में
धूली हो भरी हुई, झकोरे उस पर हों
उस शाखा के जिसपर वह बैठा हो।
पत्र हुआ शेष कवि-स्वर रुका सहसा
चौंका जयचंद मानों नींद के हिलोरे से
कोई चौंक जाय–छायी चारों ओर गहरी
घोर निस्तब्धता, अवाक् बने सब थे।
कोयल की कूक आरही थी दूर-दूर से,
करुण कराह-सी हवा में लिपटी हुई।
सुन पड़ता था चकई के श्रांत कंठ का
करुण विलाप सरिता के उस पार से
कवि चंद पोंछ के पसीना निज भाल का
दीर्घ श्वास छोड़–पत्र रख कर खाम में
बोला–"महाराज, यह पत्र स्वीकार हो।"
पत्र लिया जब जयचन्द ने तो उसका
काँप गया हाथ और धड़का हृदय भी
बोला साश्रु नयन महीप श्रांत स्वर में,
कविवर, सत्य है लिखा जो महारानी ने।
निश्चय ही मैंने किये निंद्य कर्म ईर्ष्या से,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चय ही मैंने किया नाश आर्यभूमि का
निश्चय ही मातृभूमि आज पदाक्रान्ता है,
निश्चय ही डूबा देश मेरे घोर पाप से,
निश्चय ही आर्य जाति आज पराधीना है,
निश्चय ही मैंने जो लगायी आग घर में,
आज वह फैली सब ओर नाश बन के,
चूमती हैं जिसकी शिखाएं दिविलोक को।
होके आर्य मैंने मातृतुल्य मातृभूमि को
बाध्य किया दासी बन जाने को अनार्यों की।
जानता हूँ कल इतिहास लिखा जायगा
जब आर्यभूमि का, तो मेरे इस कृत्य का
वर्णन रहेगा वहाँ और उसे पढ़ के
युग-युग पाठक घृणा से धिक्कारेंगे।
कवि ! देश-द्रोही हूँ, छिपूँ मैं कहाँ भाग के
थूक देगा गगन, उगल देगी धरती।
अब तो नहीं है पछताने का समय भी,
कविवर, आप कहें जाके महारानी से,
दिल्लीपति बंदी हैं परंतु हाय शत्रु ने
आँखें फोड़ उनकी अनर्थ कर डाला है।"
चौंक कर चीख उठा चन्द हर्ष-शोक से
"आर्यपति जीवित हैं ? अब तक जीते हैं ?
देखा है स्वयम् महाराज को या आपने
यह संवाद सुना और किसी सूत्र से ?"
वाष्परुद्ध कण्ठ से महीप कहने लगा—
"हाय दुर्भाग्य, इन्हीं आँखों से विलोका है

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने आर्यपति को गँवाते नेत्र अपने ।
किन्तु निरुपाय था, बँधा था पाप-पाश में
गौरी का गुलाम मैं बना था हतचेत था।
आर्यता गँवाके मैं सदेह प्रेतवत् था ।
करता विरोध किस भाँति तलवार से ?
लज्जा अब आती है कहूँ मैं किस मुँह से
मैं हूँ पिता रानी संयोगिता का और वह
मेरी प्रिय पुत्री है—तथापि आप सुनिये—
बोलता नहीं है कन्नौजपति आप से,
अब बोलता है पितृहृदय अधीर हो,
मैं नें जिस पाप—कालिमा को निज मुख में
ईर्ष्या से लगाया था उसे मैं निज रक्त से
अब धोता हूँ—विश्व देखे आँख खोलके
कह दें कवीन्द्र, आप जाके महारानी से
देशद्रोही जयचन्द भस्मीभूत हो गया ।
आर्य जयचन्द अब प्रकट हुआ यहाँ
नङ्गी तलवार लिये—जब तक देश की,
बेड़ियाँ कटेंगी नहीं तब तक प्रण है,
रक्खेगा न भूलके कृपाण वह म्यान में।"
राजा हुआ मौन, कविचन्द महानन्द से
बोला—'जय आर्य भूमि, जै हो महाराज की।'

* * *

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयी मोदपूरितां विभावरी विभामया,
भूमि से गगन तक अभ्रक की धूलि–सी
भर गयी अमल–धवल चारु चन्द्रिका,
मानो भरा दुग्धफेन भूतक नभ लौं ।
रात बनी मूर्तिमती 'शुक्लाऽभिसारिका,
आ रही है निज को छिपाये सित वस्त्र में ।
अलंकार 'मीलिता, सदेह देखा कवि ने,
किन्तु नीलिमा थी निशानाथ के कलङ्क की,
यह 'उन्मीलिता' का सहज स्वरूप था ।

* * *

संख्यातीत तीव्र उल्काओं का प्रकाश है
विजयी महान् आर्य–सेना है पड़ी हुई ।
कितने शिविर हैं असंख्य गज, रथ हैं
घूमते हैं प्रहरी सतर्क वीर दर्प से
नङ्गी तलवारें लिये दिव्य वर्म पहने ।
झलमल होते हैं सनाह, अस्त्र उनके,
उल्का के प्रकाश में—दवाग्नि मानो घूमती
ठौर–ठौर, माया से अनेक रूप धरके ।
शत–शत दीर्घ शिविरों के बीच रानी का
सुन्दर शिविर है—सुरक्षित हृदय हो,
जैसे अस्थिपंजरों के बीच में छिपा हुआ ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्यध्वज' पूर्ण महिमा से लहराता है,
सामने शिविर के, प्रशांत नभोदेश में ।
प्राप्त कर अपनी स्वतन्त्रता के साथ ही
खोयी हुई विजय, मुदित आर्य–सेना है ।
ज्वालामय ग्रीषम के बाद जब नभ में
देखते हैं जलद, हृदय तृप्त होता है ।
वह सुख प्रिय होता है हमें कितना
प्राप्त करते हैं जिसे घोर दुःख भोग के ।
अनायास प्राप्त बहुमूल्यवान् वस्तु भी
पाती नहीं आदर––नियम है जगत् का ।
होते यदि रत्न सभी पत्थर पहाड़ के,
कैसे पद पाती रत्नगर्भा का वसुन्धरा ।
भीतर शिविर के महान् भारतेश्वरी
बैठी हैं, समस्त आर्यभूप वहाँ बैठे हैं ।
बैठे हैं विजयमद पीके उन्मत्त हो
मृत्युञ्जय सेनाध्यक्ष वीर आर्य सेना के ।
मन्त्री सभी बैठे हैं, विचार में निमग्न से,
मानो साम, दाम, दंड, भेद वहां बैठे हों,
ज्ञान–अनुभव–वृद्ध मंत्रियों के रूप में ।
कवि चन्द बैठा है समक्ष महारानी के
मानो रुद्र तेजोमय वीरभद्र बैठा हो
सेवा में भवानी के–प्रभावपूर्ण द्रश्य है ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुग्ध फेननिभ एक शय्या है बिछी हुई
राजा जयचन्द मृतप्राय हैं पड़े हुए ।
जीवन की ज्योति अब क्षीण हुई जाती है,
राजा हैं बने हुए प्रदीप निर्धन का,
हाय, जलते ही जो सनेह के अभाव से,
करता उपक्रम तुरन्त बुझ जाने का ।
चिंतित सभी हैं, यत्नशील राज वैद्य हैं,
बार–बार कवि चन्द उठकर राजा को,
देखता है, दीर्घ श्वास त्याग बैठ जाता है ।
नृत्य करती हैं दो तरंगें एक साथ ही
कवि –शांत–मानस में सुख और दुख की ।
सुन पड़ती है धड़कन भी हृदय की
ऐसी है कठोर निस्तब्धता शिविर में ।
बोला जयचन्द व्यग्र अस्फुट स्वर में–
"आर्यपति, मैंने ही विनाश किया देश का
पृथ्वीपति पृथ्वीराज, आज क्षमा कर दो ।
रक्षा करो मेरी नरकाग्नि से, प्रणत हूँ,
देश–द्रोही, मैं ही जयचन्द देशद्रोही हूँ,
रोम–रोम मेरा जलता है मनस्ताप से,
होगा कौन मुझ–सा अभागा आर्यभूमि में ।"
हाथ मलता है कन्नौजपति व्यग्र हो,
मानो वह, 'आयुरेखा' हाथ की मिटाता हो ।
सुन प्रलाप सकरुण जयचन्द का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रो पड़े सभासद, कवींद्र हुआ विचलित,
बार-बार हृदय उमड़ आया रानी का।
जयचन्द बोला फिर एक आह भर के
—"देखता हूँ, अब, देखता हूँ दूर नभ में
माता सिंहवाहिनी हैं, भारत-वसुंधरा,
सिर पर हिम का किरीट है लुभावना,
मानो उदयाद्रि पर रम्य शशि-लेखा हो।
छत्र है जलद का, असंख्य इन्द्रधनु-से
माता हैं विभूषित—त्रिशूल लिये कर में,
मानो शक्ति केंद्रित हो सृष्टि, स्थिति,लय की
अम्बिका के कर में—नयन तृप्त हो गये।
स्नेह भरी आँखें हैं, प्रसन्न हैं, प्रशांत हैं,
पुष्प, अर्घ्य लेकर उपस्थित त्रिदेव हैं।
गूँजता है 'पृथ्वी सूक्त' मानो वेद भक्ति से
स्वर रूप लेके 'सामगान' में निरत हों।
और-और, देखो वह देखो आर्य-सेनाके,
वीर जितने हैं मरे इस धर्मयुद्ध में,
आरती उतारते हैं, दिव्य रूप धर के।
आज होता मैं वहीं वीरगति पाता जो।
माता मुस्काईं—सुधावृष्टि हुई नभ से,
रूप की विभा से उद्भासित भुवन है।
रोको मत—मैं भी चला पूजा शेष हो चली,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

माता आर्य-जननी, हे भवभयहारिणी,
तनिक सहारा दो——दया करो दयामयी।"
एक बार चीखकर राजा जयचन्द ने
चाहा उठ बैठना, परंतु प्राण उसके
छोड़कर लीन हुए माता के चरण में।
दीप-शिखा लीन हुई जाके अंशुमाली में
लीन हुई लहर अनंत पारावार में।
सौंपकर निजकृत कर्म-भार प्रभु को,
सौंपकर यश-अपयश इतिहास को,
सौंप कर नाशवान देह मातृभूमि को,
राजा जयचन्द हुआ पार भव-सिंधु के।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल्दी घाटी

चेतक की मृत्यु और प्रताप का विलाप

जो कुछ बचे सिपाही शेष, हट जाने का दे आदेश ।
अपने भी हट गया नरेश, वह मेवाड़-गगन-राकेश ।।
बनकर महा काल का काल, जूझ पड़ा अरि से तत्काल ।
उसके हाथों में विकराल, मरते दम तक थी करवाल ।।
उस पर तन-मन-धन बलिहार, झाला धन्य, धन्य परिवार ।
राणा ने कह कह शत-बार, कुल को दिया अमर अधिकार ।।
हाय, ग्वालियर का शिरताज, सेनप रामसिंह अधिराज ।
उसका जगमग जगमग ताज, शोणित-रज लुण्ठित है आज ।।
राजे—महाराजे—सरदार, जो मिट गये लिये तलवार ।
उनके तर्पण में अविकार, आँखों से आँसू की धार ।।
बढ़ता जाता विकल अपार, घोड़े पर हो व्यथित सवार ।
सोच रहा था बारम्बार, कैसे हो मां का उद्धार ।।
मैंने किया मुगल-बलिदान, लोहू से लोहित मैदान ।
बच कर निकल गया पर मान, पूरा हो न सका अरमान ।।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे बचे देश सम्मान, कैसे बचा रहे अभिमान।
कैसे हो भू का उत्थान, मेरे एकलिङ्ग भगवान॥
स्वतन्त्रता का झण्डा तान कब गरजेगा राजस्थान ?
उधर उड़ रहा था वह बाजि, स्वामी रक्षा का कर ध्यान॥
उसको नद-नाले-चट्टान, सकते रोक न वन-वीरान।
राणा को लेकर अविराम, उसको बढ़ने का था ध्यान॥
पड़ी अचानक नदी अपार, घोड़ा कैसे उतरे पार।
राणा ने सोचा इस पार, तब तक चेतक था उस पार॥
शक्तसिंह भी ले तलवार, करने आया था संहार।
पर उमड़ा राणा को देख, भाई-भाई का मधु प्यार॥
चेतक के पीछे दो काल, पड़े हुए थे ले असि-ढाल।
उसने पथ में उनको मार, की अपनी पावन करवाल॥
आगे बढ़कर भुजा पसार, बोला आँखों से जल ढार।
रुक जा, रुक जा, ऐ तलवार, 'नीला-घोड़ारा-असवार'॥
पीछे से सुन तार पुकार, फिर कर देखा एक सवार।
हय से उत्तर पड़ा तत्काल, लेकर हाथों में तलवार॥
राणा उसको बैरी जान, काल बन गया कुन्तल तान।
बोला "कर लें शोणित पान, आ, तुझको भी दें बलिदान"॥
पर देखा झर-झर अविकार, बहती है आँसू की धार।
गर्दन में लटकी तलवार, घोड़े पर हैं शक्त सवार॥
उतर वहीं घोड़े को छोड़, चला शक्त कम्पित कर जोड़।
पैरों पर गिर पड़ा विनीत, बोला धीरज-बन्धन तोड़॥
करुणा कर तू करुणागार, दे मेरे अपराध विसार।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या मेरा दे गला उतार, तेरे कर में है तलवार ''।।
यह कह कह कर बारम्बार, सिसकी भरने लगा अपार।
राणा भी भूला संसार, उमड़ा उर में बन्धु-दुलार।।
उसे उठाकर लेकर गोद, गले लगाया सजल-समोह।
मिलता था जो रज में प्रेम, किया उसे सुरभित-सामोद।।
लेकर वन्य-कुसुम की धूल, बही हवा मन्थर अनुकूल।
दोनों के शिर पर अविराम, पेड़ों ने बरसाये फूल।।
कल-कल छल-छल भर स्वर-तान, कहकर कुल-गौरव अभिमान।
नाले ने गाया स-तरंग, उनके निर्मल-यश का गान।।
तब तक चेतक कर चीत्कार, गिरा धरा पर देह बिसार।
लगा लोटने बारम्बार, बहने लगी रक्त की धार।।
बरछे-असि भाले गम्भीर, तन में लगे हुए थे तीर।
जर्जर उसका सकल शरीर, चेतक था व्रण-व्यथित अधीर।।
करता घावों पर दृग-कोर, कभी मचाता दुख से शोर।
कभी देख राणा की ओर, रो देता, हो प्रेम-विभोर।।
लोट—लोट सह व्यथा महान्, यश का फहरा अमर—निशान।
राणा-गोदी में रख शीश, चेतक ने कर दिया पयान।।
घहरी दुख की घटा-नवीन, राणा बना विकल बल-हीन।
लगा तड़फने बारम्बार, जैसे जल-वियोग से मीन।।
"हा ! चेतक, तू पलकें खोल, कुछ तो उठकर मुझसे बोल।
मुझको तू न बना असहाय, मत बन मुझसे निठुर अबोल।।
मिला बन्धु जो खोकर काल, तो तेरा चेतक, यह हाल।
हा चेतक, हा चेतक, हाय", कहकर चिपक गया तत्काल।।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अभी न तू मुझसे मुख मोड़, तू न इस तरह नाता तोड़ ।
इस भव-सागर-बीच अपार, दुख सहने के लिये न छोड़ ॥
वैरी को देना परिताप, गज-मस्तक पर तेरी टाप ।
फिर यह तेरी निद्रा देख, विष-सा चढ़ता है संताप ॥
हाय, पतन में तेरा पात, क्षत पर कठिन लवण-आघात् ।
हा, उठ जा, तू मेरे बन्धु, पल-पल बढ़ती आती रात ॥
चला गया गज रामप्रसाद, तू भी चला बना आज़ाद ।
हा, मेरा अब राजस्थान, दिन पर दिन होगा बरबाद ॥
किस पर देश करे अभिमान, किस पर छ.ती हो उत्तान ।
भाला मौन, मौन असि म्यान, इस पर कुछ तो कर तू ध्यान ॥
लेकर क्या होगा अब राज, क्या मेरे जीवन का काज ?"
पाठक, तू भी रो दे आज, रोता है भारत-सिरताज ॥
तड़प-तड़प अपने नभ-गेह, आँसू बहा रहा था मेह ।
देख महाराणा का हाल, बिजली व्याकुल, कम्पित देह ॥
घुल-घुल, पिघल-पिघल कर प्राण, आँसू बन बन कर पाषाण ।
निर्झर-मिस बहता था हाय, हा, पर्वत भी था म्रियमाण ॥
क्षण भर ही तक था अज्ञान, चमक उठा फिर उर में ज्ञान ।
दिया शक्त ने अपना वाजि, चढ़कर आगे बढ़ा महान् ॥
जहाँ गड़ा चेतक-कंकाल, हुई जहाँ की भूमि निहाल ।
वहीं देव मन्दिर के पास, चबूतरा बन गया विशाल ॥
होता धन योवन का ह्रास, पर है यश का अमर-विहास ।
राणा रहा न, वाजि-विलास, पर उनसे उज्ज्वल इतिहास ॥
बन कर राणा सदृश महान्, सीखें हम होना कुर्बान ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतक सम लें वाजि खरीद, जननी-पद पर हों बलिदान ॥
आओ खोज निकालें यंत्र, जिससे रहें न हम परतंत्र ।
फूंकें कान कान में मन्त्र, बन जायें स्वाधीन-स्वतंत्र ॥
हल्दीघाटी-अवनी पर, सड़ती थीं बिखरी लाशें ।
होती थी घृणा घृणा को, बदबू करती थीं लाशें ॥

स्वामि-भक्ति

थी आधी रात अँधेरी, तम की घनता थी छाई ।
कमलों की आँखों से भी, कुछ देता था न दिखाई ॥
पर्वत पर, घोर विजन में, नीरवता का शासन था ।
गिरि अरावली सोया था, सोया तमसावृत वन था ॥
धीरे से तरु के पलल्व, गिरते थे भू पर आकर ।
नीडों में खग सोये थे, सन्ध्या को गान सुनाकर ॥
नाहर अपनी मांदों में, मृग वन-लतिका झुरमुट में ।
दृग मूंद सुमन सोये थे, पंखुरियों के सम्पुट में ॥
गाकर मधु-गीत मनोहर, मधुमाखी मधुछातों पर ।
सोई थीं बाल तितलियाँ, मुकुलित नव जलजातों पर ॥
तिमिरालिंगन से छाया, थी एकाकार निशा भर ।
सोई थी नियत अचल पर, ओढ़े घनतम की चादर ॥
आँखों के अन्दर पुतली, पुतली में तिल की रेखा ।
उसनें भी उस रजनी में केवल तारों को देखा ॥
वे नभ पर काँप रहे थे, था शीत-कोप कँवलों में ।
सूरज-मयंक सोये थे, अपने-अपने बंगलों में ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशि-अँधियाली में निद्रित, मारुत रुक-रुक चलता था।
अम्बर था तुहिन बरसता, पर्वत हिम-सा गलता था॥
हेमन्त-शिशिर का शासन, लम्बी थी रात विरह-सी।
संयोग-सदृश लघु वासर, दिनकर की छवि हिमकर-सी॥
निर्धन के फटे पुराने, पट के छिद्रों से आकर।
शर-सदृश हवा लगती थी, पाषाण-हृदय दहला कर॥
लगती चन्दन सी शीतल, पावक की जलती ज्वाला।
बाड़व भी काँप रहा था, पहने तुषार की माला॥
जग-अधर विकल हिलते थे, चलदल के दल से थर-थर।
ओसों के मिस नभ-दृग से, बहते थे आँसू झर-झर॥
यव की कोमल बालों पर, मटरों की मृदु फलियों पर।
नभ के आँसू बिखरे थे, तीसी की नव कलियों पर॥
घन-हरित चने के पौधे, जिनमें कुछ लहुरे जेठे।
भिग गये ओस के जल से, सरसों के पीत मुरेठे॥
वह शीत काल की रजनी, कितनी भयदायक होगी।
पर उसमें भी करता था, तप एक वियोगी योगी॥
वह नीरव निशीथिनी में, जिसमें दुनिया थी सोई।
निर्झर की करुण-कहानी, बैठा सुनता था कोई॥
उस निर्झर के तट पर ही, राणा की दीन-कुटी थी।
वह कोने में बैठा था, कुछ वंकिम सी भृकुटी थी॥
वह कभी कथा झरने की, सुनता था कान लगाकर।
वह कभी सिहर उठता था, मारुत के झोंके खाकर॥
नीहार-भार-नत मन्थर, निर्झर से सीकर लेकर।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कभी हवा चलती थी, पर्वत को पीड़ा देकर ॥
तब वह कथरी के भीतर, आहें भरता था सोकर ।
वह कभी याद जननी की–करता था पागल होकर ॥
वह कहता था वैरी ने–मेरे गढ़ पर गढ़ जीते ।
वह कहता रोकर, माँ की, अब सेवा के दिन बीते ॥
यद्यपि जनता के उर में, मेरा ही अनुशासन है ।
पर इंच-इंच भर भू पर, अरि का चलता शासन है ॥
दो चार दिवस पर रोटी, खाने को आगे आई ।
केवल सूरत भर देखी, फिर भगकर जान बचाई ॥
अब वन–वन फिरने के दिन, मेरी रजनी जगने की ।
क्षण आँखों के लगते ही, आई नौबत भगने की ॥
मैं बुझा रहा हूँ शिशु को, कह-कहकर समर-कहानी ।
बुद-बुद कुछ पका रही है, हा, सिसक सिसक कर रानी ॥
आँसूजल पोंछ रही है, चिर क्रीत पुराने पट से ।
पानी पनिहारिन-पलकें, भरतीं अन्तर-पनघट से ॥
तब तक चमकी वैरी-असि, मैं भगकर छिपा अनारी ।
काँटों के पथ से भागी, हा, वह मेरी सुकुमारी ॥
तृण-घास-पात का भोजन, रह गया वहीं पकता ही ।
मैं झुरमुट के छिद्रों से, रह गया उसे तकता ही ॥
चलते—चलते थकने पर, बैठा तरु की छाया में ।
क्षण भर ठहरा सुख आकर, मेरी जर्जर-काया में ॥
जल-हीन रो पड़ी रानी, बच्चों को तृषित रुलाकर ।
कुश-कण्टक की शय्या पर, वह सोई पलकें [illegible] कर ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तक अरि के आने की, आहट कानों में आई।
बच्चों ने आँखें खोलीं, कह-कहकर माई-माई ॥
रव के भय से शिशु-मुख को, वल्कल से बाँध भगे हम।
गह्वर में छिपकर रोने, रानी के साथ लगे हम ॥
वह दिन न अभी भूला है, भूला न अभी गह्वर है।
सम्मुख दिखलाई देता, वह आँखों का झर-झर है ॥
जब सहन न होता, उठता, लेकर तलवार अकेला।
रानी कहती न अभी है, संगर करने की बेला ॥
तब भी न तनिक रुकता तो—बच्चे रोने लगते हैं।
खाने को दो कह-कहकर, व्याकुल होने लगते हैं ॥
मेरे निर्बल हाथों से, तलवार तुरत गिरती है।
इन आँखों की सरिता में, पुतली-मछली तिरती है ॥
हा, क्षुधा-तृषा से आकुल, मेरा यह दुर्बल तन है।
इसको कहते जीवन क्या, यह ही जीवन जीवन है।
अब जननी के हित मुझको, मेवाड़ छोड़ना होगा।
कुछ दिन तक माँ से नाता, हा विवश तोड़ना होगा ॥
अब दूर विजन में रहकर, राणा कुछ कर सकता है।
जिसकी गोदी में खेला, उसका ऋण भर सकता है ॥
यह कह कर उसने निशि में, अपना परिवार जगाया।
आँखों में आँसू भर कर, क्षण उनको गले लगाया ॥
बोला—"तुम लोग यहीं से, माँ का अभिवादन करलो।
अपने-अपने अन्तर में, जननी की सेवा भर लो ॥
चल दो, क्षण देर करो मत, अब समय न है रोने को।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेवाड़ न दे सकता है, तिल भर भी भू सोने को ॥
चल किसी विजन-कोने में, अब शेष बिता दो जीवन ।
इस दुखद भयावह ज्वर की, यह ही है दवा सजीवन" ॥
सुन व्यथा-कथा रानी ने, आँचल का कोना धर कर ।
कर लिया मूक अभिवादन, आँखों में पानी भर कर ॥
हाँ, काँप उठा रानी के, तन-पट का धागा-धागा ।
कुछ मौन-मौन जब माँ से, अँचल पसार कर मांगा ॥
बच्चों ने भी रो-रोकर, की विनय वन्दना माँ. की ।
पत्थर भी पिघल रहा था, वह देख-देख कर झाँकी ॥
राणा ने मुकुट नवाया, चलने की हुई तैयारी ।
पत्नी शिशु लेकर आगे, पीछे पति वल्कल-धारी ॥
तत्काल किसी के पद का, खुर-खुर रव दिया सुनाई ।
कुछ मिली मनुज की आहट, फिर जय-जय की ध्वनि आई ॥
राणा की जय राणा की––जय-जय राणा की जय हो ।
जय हो प्रताप की जय हो, राणा की सदा विजय हो ॥
वह ठहर गया रानी से, बोला––"मैं क्या हूँ सोता ?
मैं स्वप्न देखता हूँ या, भ्रम से ही व्याकुल होता ॥
तुम भी सुनती या मैं ही, श्रुति–मधुर नाद सुनता हूँ ?
जय–जय की मन्थर ध्वनि में, मैं मुक्तिवाद सुनता हूँ" ॥
तब तक भामा ने फेंकी, अपने हाथों की लकुटी ।
'मेरे शिशु' कह राणा के––पैरों पर रख दी त्रिकुटी ॥
आँसू से पद को धोकर, धीमे––धीमे वह बोला––
"यह मेरी सेवा" कह कर, थैलों के मुँह को खोला ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खन-खन-खन मणिमुद्रा की, मुक्ता की राशि लगा दी ।
रत्नों की ध्वनि से वन की, नीरवता सकल भगा दी ॥
"एकत्र करो इस धन से, तुम सेना वेतन-भोगी ।
तुम एक बार फिर जूझो, अब विजय तुम्हारी होगी ॥
कारागृह में बन्दी माँ, नित करती याद तुम्हें है ।
तुम मुक्त करो जननी को, यह आशीर्वाद तुम्हें है" ॥
वह निर्बल वृद्ध तपस्वी, लग गया हाँफने कह कर ।
गिर पड़ी लार अवनी पर, हा उसके मुख से बहकर ॥
वह कह न सका कुछ आगे, सब भूल गया आने पर ।
कटि-जानु थामकर बैठा, वह भू पर थक जाने पर ॥
राणा ने गले लगाया, कायरता धो लेने पर ।
फिर विदा किया भामा को, घुल-घुल कर रो लेने पर ॥

खुल गये कमल-कोषों के, कारागृह के दरवाजे ।
उससे बन्दी अलि निकले, संगर के बाजे बाजे ॥
ऊषा ने राणा के सिर, सोने का ताज सजाया ।
उठकर मेवाड़—विजय का, खग-कुल ने गाना गाया ॥
कोमल-कोमल पत्तों में, फूलों को हँसते देखा ।
खिंच गई वीर के उर में, आशा की पतली रेखा ॥
उसको बल मिला हिमालय का, जननी-सेवा-अनुरक्ति मिली ।
वर मिला उसे प्रलयंकर का, उसको चण्डी की शक्ति मिली ॥
सूरज का उसको तेज मिला, नाहर समान वह गरज उठा ।
पर्वत पर झण्डा फ़हराकर, सावन-घन सा वह गरज उठा ॥
तलवार निकाली, चमकाई, अम्बर में फेरी घूम-घूम ।
फिर रखी म्यान में चम-चम-चम, खरधार दुधारी चूम-चूम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेवाड़-सिंहासन

यह एकलिंग का आसन है, इस पर न किसी का शासन है।
नित सिहक रहा कमलासन है, यह सिंहासन, सिंहासन है॥
यह सम्मानित अधिराजों से, अर्चित है राज-समाजों से।
इसके पद-रज पोंछे जाते, भूपों के सिर के ताजों से॥
इसकी रक्षा के लिये हुई, कुर्बानी पर कुर्बानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर, यह सिंहासन अभिमानी है॥

खिलजी-तलवारों के नीचे, थरथरा रहा था अवनी-तल।
वह रत्नसिंह था रत्नसिंह, जिसने कर दिया उसे शीतल॥
मेवाड़-भूमि-बलिवेदी पर, होते बलि शिशु रनिवासों के।
गोरा-बादल-रण-कौशल से, उज्ज्वल पन्ने इतिहासों के॥
जिसने जौहर को जन्म दिया, वह वीर पद्मिनी रानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर, यह सिंहासन अभिमानी है॥

मूंजा के शिर के शोणित से, जिसके भाले की प्यास बुझी।
हम्मीर वीर वह था जिसकी—असि वैरी-उर कर पार जुझी॥
प्रण किया वीरवर चूंडा ने, जननी—पद—सेवा करने का।
कुम्भा ने भी व्रत ठान लिया, रत्नों से अंचल भरने का॥
यह वीर-प्रसविनी वीर-भूमि, रजपूतों की रजधानी है।
राणा! तू इसकी रक्षाकर, यह सिंहासन अभिमानी है॥

जयमल ने जीवन-दान किया, पत्ता ने अर्पण प्रान किया।
कल्ला ने इसकी रक्षा में, अपना सब कुछ कुर्बान किया॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.
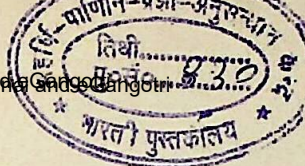
साँगा को अस्सी घाव लगे, मरहम-पट्टी थी आँखों पर।
तो भी उसकी असि बिजली सी, फिर गई छपाछप लाखों पर ॥
अब भी करुणा की करुण-कथा, हम सबको याद जबानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर, यह सिंहासन अभिमानी है ॥
क्रीड़ा होती हथियारों से, होती थी केलि कटारों से।
असि धार देखने को उँगली, कट जाती थी तलवारों से ॥
हल्दी-घाटी का भैरव-पथ, रंग दिया गया था ख़ूनों से।
जननी-पद अर्चन किया गया, जीवन के विकच प्रसूनों से ॥
अब तक उस भीषण घाटी के, कण-कण की चढ़ी जवानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर, यह सिंहासन अभिमानी है ॥
भीलों में रण-झँकार अभी, लटकी कटि में तलवार अभी।
भोलेपन में ललकार अभी, आँखों में है अंगार अभी ॥
गिरिवर के उन्नत-शृंगों पर, तरु के मेवे आहार बने।
इसकी रक्षा के लिये शिखर थे—राणा के दरबार बने ॥
जावरमाला के गह्वर में, अब भी तो निर्मल पानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर, यह सिंहासन अभिमानी है ॥
चूंडावत ने तन भूषित कर, युवती के शिर की माला से।
खलबली मचा दी मुगलों में, अपने-भीषणतम भाला से ॥
घोड़े को गज पर चढ़ा दिया, 'मत मारो' मुग़ल-पुकार हुई।
फिर राजसिंह—चूंड़ावत से, अवरंगजेब की हार हुई ॥
वह चारुमती रानी थी, जिसकी चेरी बनी मुगलानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर, यह सिंहासन अभिमानी है ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ही दिन बीते फतहसिंह, मेवाड़-देश का शासक था।
वह राणा-तेज उपासक था, तेजस्वी था अरि-नाशक था॥
उसके चरणों को चूम लिया, कर लिया समर्चन लाखों ने।
टकटकी लगा उसकी छवि को, देखा कर्जन की आँखों ने॥
सुनता हूँ उस मर्दाने की, दिल्ली की अजब कहानी हैं।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर, यह सिंहासन अभिमानी है।
तुझमें चूँडा सा त्याग भरा, बापा-कुल का अनुराग भरा॥
राणा-प्रताप सा रग रग में, जननी-सेवा का राग भरा॥
अगणित-उर-शोणित से सिंचित, इस सिँहासन का स्वामी है।
भूपालों का भूपाल अभय, राणा–पथ का तू गामी है॥
दुनिया कुछ कहती है सुन ले, यह दुनिया तो दीवानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर, यह सिँहासन अभिमानी है॥

७. भैरवी

युगावतार गांधी।

चल पड़े जिधर दो डग, मग में चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि गड़ गये कोटि दृग उसी ओर;
जिसके सिर पर निज धरा हाथ उसके सिर-रक्षक कोटि हाथ,
जिस पर निज मस्तक झुका दिया, झुक गये उसी पर कोटि माथ;
हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु ! हे कोटिरूप, हे कोटिनाम !
तुम एकमूर्ति, प्रतिमूर्ति, कोटि हे कोटिमूर्ति, तुमको प्रणाम !
युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख,
तुम अचल मेखला बन भू की खींचते काल पर अमिट रेख;

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
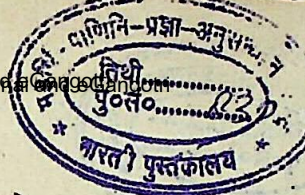
तुम बोल उठे, युग बोल उठा तुम मौन बने, युग मौन बना,
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर युगकर्म जगा, युगधर्म तना;
युग-परिवर्त्तक, युग-सँस्थापक, युग-संचालक, हे युगाधार !
युग-निर्माता, युग-मूर्ति ! तुम्हें युग-युग तक युग का नमस्कार !
तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़ रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नवजीवन की नीवें ले नव चेतन की दिव्यदृष्टि;
धर्माडम्बर के खँडहर पर कर पद-प्रहार, कर धरा ध्वस्त
मानवता का पावन मन्दिर, निर्माण कर रहे सृजनव्यस्त !
बढ़ते ही जाते दिग्विजयी ! गढ़ते तुम अपना रामराज,
आत्माहुति के मणिमाणिक से मढ़ते जननी का स्वर्ण ताज !
तुम कालचक्र के रक्त सने दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़,
मानव को दानव के मुँह से ला रहे खींच बाहर बढ़ बढ़;
पिसती कराहती जगती के प्राणों में भरते अमर दान,
अधमरे देखते हैं तुमको, किसने आकर यह किया त्राण ?
दृढ़ चरण, सुदृढ़ करसंयुट से तुम कालचक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर लिखते करुणा के पुण्य श्लोक
कँपता असत्य, कँपती मिथ्या, बर्बरता कँपती है थर थर
कँपते सिंहासन, राजमुकुट कँपते, खिसके आते भू पर,
हैं अस्त्र-शस्त्र कुन्ठित लुन्ठित, सेनाएँ करती गृह-प्रयाण !
रणभेरी तेरी बजती है, उड़ता है तेरा ध्वज निशान !
हे युग-द्रष्टा हे युग-सृष्टा पढ़ते कैसा यह मोक्ष मन्त्र ?
इस राजतन्त्र के खँडहर में उगता अभिनव भारत स्वतन्त्र !

राणा प्रताप के प्रति

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक बन गये आज ही वैरागी ?
उत्फुल्ल मधु-मंदिर सरसिज में यह कैसी तरुण अरुण आगी ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
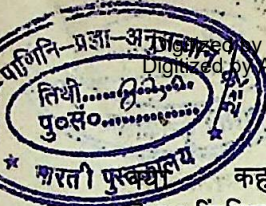
कहा, कि—तब तक तुम न कभी
वैभव-सिंचित शृंगार करो, क्या कहा, कि—,
'जब तक तुम न विगत—गौरव स्वदेश उद्धार करो।'
माणिक मणिमय सिंहासन को कङ्कण पत्थर के कोनों पर,
सोने चाँदी के पात्रों को पत्तों के पीले दोनों पर,
वैभव से विह्वल महलों को काँटों की कटु झोंपड़ियों पर,
मधु से मतवाली बेलाएँ भूखी बिलखाती घड़ियों पर।
रानी-कुमार-सी निधियों को मां की आँसू की लड़ियों पर,
तुमने अपने को लुटा दिया आज़ादी की फुलझड़ियों पर !
निर्वासन के निष्ठुर प्रण में धुँधवाती रक्त-चिता रण में,
बाणों के भीषण वर्षण में फौहारों से बहते व्रण में,
बेटा की भूखी आहों में बेटी की प्यासी दाहों में,
तुमने आज़ादी को देखा मरने की मीठी चाहों में ॥
किस अमर शक्ति-आराधन में किस मुक्ति युक्ति के साधन में,
मेरे वैरागी वीर व्यग्र किस तपबल के उत्पादन में ?
हम कसे कवच, सज अस्त्र-शस्त्र व्याकुल हैं रण में जाने को,
मेरे सेनापति ! कहाँ छिपे ! तुम आओ शङ्ख बजाने को;
जागो ! प्रताप, मेवाड़ देश के लक्ष्य भेद हैं जगा रहे,
जागो ! प्रताप, माँ-बहनों के अपमान-छेद हैं जगा रहे;
जागो प्रताप मतवालों, के मतवाले सेना जगा रहे,
जागो प्रताप, हल्दीघाटी में वैरी भेरी बजा रहे !
मेरे प्रताप तुम फूट पड़ो मेरे आँसू की धारों से,
मेरे प्रताप तुम गूँज उठो मेरी सन्तप्त पुकारों से;
मेरे प्रताप तुम बिखर पड़ो मेरे उत्पीड़न भारों से,
मेरे प्रताप तुम निखर पड़ो मेरे बलि के उपहारों से;

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.